प्रकाशक
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
उदयपुर

मूल्य २॥।)

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कलात्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेषकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ४० महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन होचुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

(१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
(२) लोक साहित्य-विभाग,
(३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
(४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
(५) संग्रहालय-विभाग,
(६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
(७) पृथ्वीराज रासो एवं राणा रासो-सम्पादन संशोधन विभाग
(८) भील साहित्य-संग्रह-विभाग,
(९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
(१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-'शोध पत्रिका' संपादन विभाग,

(११) संस्कृत-'राज प्रशस्ति' ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग,
(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त 'सामान्य विभाग' के अन्तर्गत अन्यान्य कई प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं. उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन' भाषण माला
(२) म० म० डा० गौरीशंकर 'ओझा आसन „
(३) उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द आसन' „
(४) निबन्ध-प्रतियोगिताएँ
(५) भाषण प्रति योगिताएँ,
(६) कवि सम्मेलन
(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति-समारोह ।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रगतिक कार्य कर रहा है । राजस्थान के गौरव-गरिमा की महिमामयी झाँकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है. उसके पृष्ठों को खोलने की । साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है ।

साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम और ढूँढ ढूँढ कर २२००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखित अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है । इनमें विविध प्रकार के प्राचीन छन्द सुरक्षित हैं । विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है । ये विभिन्न प्रकार के गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों, कस्बों एवं गाँवों में बिखरे

पड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली सस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली आरही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जासकते थे; किन्तु साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २ उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा २ योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लन्दन) के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय? यह तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जासकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री
मंत्री
साहित्य-संस्थान

विनीत
भगवतीलाल भट्ट
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

सम्पादकीय

साहित्य संग्रह भी एक प्रकार से समुद्र रूप में कहा जा सकता है। यह प्रारंभ में वीर रस के कारण तूफान प्रशंसात्मक कविता के कारण तरंगित रूप में प्रकाशित हो आपके समक्ष आ चुका है। प्रस्तुत भाग में यह शांत रूप से उपस्थित है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूपी भयंकर जल जीव भी इसके शान्त स्वरूप में लुप्त हो गये हैं। मध्यमें नीलिमा [गुदलापन] रूपी विकार भी नष्ट हो स्थिररूप से निर्मलता ने स्थान प्राप्त कर लिया है। खारत्व भी इसकी अमृतमय धारा के सम्पर्क से अब दूर हो गया है। इसमे अब वह तूफानी गड़-गड़ाहट नहीं रही तथा यह मर्यादित हो गया है। नौका रूपी काया अब सहज ही में पार की जासकती है। भमर [जल चक्र] में गिरने का खतरा नहीं रहा, गोता लगाने वाले इसमें से रत्न ही नहीं अपितु जल-शायी प्रभू को भी सहज ही में प्राप्त कर सकते हैं। मानस मराल को मुक्ति रूपी मुक्ता की अब प्राप्ति हो सकती है। इस संग्रह रूपी समुद्र की पूर्ति विविध कवियों द्वारा निर्मित काव्य धारा से हुई है।

इसके रचयिताओं में कान्हा बारहठ, आशा बारहठ, ईश्वरदास, ओपाजी, राठौड़ पृथ्वीराज, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जिनकी रचनायें त्रिताप नाशक एवं निवृत्ति दायक हैं। लोह मन को ईश्वर की ओर लगाने में चुम्बक सदृश है। मान अपमान को भुलाकर प्रभु-भक्ति में ही अपना गौरव अनुभव कराने वाली है। ईश्वर के गुण गान के सामने राजा महाराजाओं का तो क्या शाहंशाहा का यश गान भी कुछ नहीं, ऐसा अनुभव कराती है तथा असत्य से सत्य की ओर आकर्षित कराती रहती है साथ ही मृत्युमय से पोषित कर अमरत्व को प्राप्त कराने वाली है।

ये रचनायें पढ़ने सुनने वाली के श्रोत्र-मार्ग से होती हुई हृदय-गत हो अंतरात्मा में गुंजार करती है।

आशा बारहठ प्रभू स्मरण में तल्लीन होकर रट लगाते हैं:—

"मेरो मन माधवे लागो, मद सूदने मुरारी।
नारायणे रामे नरसिंघे, दामोदरं दातारे॥"

ईश्वरदास की भी ईश्वर के प्रति असीम श्रद्धा झलकती है, उनके सर्वस्व एकमात्र प्रभु ही हैं—

"माधा मात तूं तात तूं प्राण दीवाण मू,
सख्य तूं सहोदर तूं सखाई।
सगो साजण सयण सामि तूं सांमला,
करम तू कुटंब तूं कृत कमाई॥"

ओपा भी ईश्वर भजन की प्रेरणा देते हैं, उनका कथन है कि हे प्राणी! फिर इस जन्म भूमिपर तू नहीं आयगा। इसी लिये जवानी के आमोद प्रमोद छोड़कर प्रभु-स्मरण में लगजा।

"जोवण का रमो विहाणे उठ जासी,
आदर भजन तणो अभियास।
प्राणिया कदे न आवे पाछो,
वळे न वीजा वागड़ वास॥"

कान्हा बारहठ काल रूपी बिल्ली के मुँह में चबाने के भय से व्याकुल हो मुक्त होने के लिये करुणाकर प्रभु से याचना करते हैं—

"कान्हियो कहे मोखि करुणाकर,
विलम्ब करिसी तो वात वरां।
माया काळ मंजारी मुँहड़े,
करड़ी जतो पुकार करां॥"

प्रभु ने कान्हा बारहठ की पुकार नहीं सुनी अतः उलहना (उपालंभ) देते हैं कि हे प्रभो! गिरि शिखर पर चलती हुई चींटी की पद-ध्वनि तो आप सुन लेते हैं; किन्तु उच्चस्वर से पुकारने पर आप नहीं सुनते, ऐसा करना आपका कहाँ तक ठीक है?

"चढ़ती पग भरे परवते चींटी,
चितवो तेरा मँचल विचार।

काइ साँभळो नहीं करुणाकर,
प्रगट साद करां पुकार ॥"

वे अपने आपको कपटी समझते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! आपसे छिपाकर कर्म करते हुए भी आपसे ही क्षमा याचना करता हूँ। अतः आप मेरे असंख्य अपराधों को क्षमा कर तथा अपराधों की ओर न देख मुझे तार (मोक्ष) दीजिये; [क्योंकि आप तरन-तारन हैं]।

'कान्हियो मूझ सौं करम कीधे कपट,
आवि जाचे वळे तुहिज आगे।
अनंत कर न्यून वळि इता मांगां अनँत,
मरां लेखो रखे तार मांगे॥"

वह एक मात्र "राम" नाम का ही मुक्ति दाता मानते हैं और सबसे यही सरल सुगम साधन भवसिन्धु से पार होने के लिये बतलाते हैं। उनके समक्ष शास्त्र एवं पुराणादि कुछ नहीं हैं।

"एकणि नामि पार उतरिये।
पढ़िये किसा अढार पुराण॥"

प्रभु चरणों में राता [रत अरुणवर्ण, रँगे हुए] को ही वे उज्ज्वल श्वेत (पवित्र) मानते हैं—

"चित ज्यां हेत सहित हरि चरणे।
राता ताइ उजला रहे'॥

पृथ्वीराज राठौड़ (राठोड़) प्रभु की उदारता पर प्रकाश डालते हुए भक्त-अभक्त पर समान कृपा होना कहते हैं। वे भगवान राम को सम्बोधित करते हैं हे दशरथ नन्दन! आपने एक [रावण] को मोक्ष दान और दूसरे (विभीषण) को लंका का दान देकर भक्त अभक्त पर एक सी ही कृपा की।

सारिखो आपरे हाथ दसरथ सुतन,
दहूँ विध राकसां दान दीधो॥"

उन्होंने अच्छा होना ईश्वर कृपा का फल और बुरा होना अपने दुर्भाग्य का कारण माना है। इस प्रकार अच्छाई के लिए प्रभु पर कृतज्ञता प्रगट की है—

"रूड़ो जको प्रताप रावलो,
भूंडो जिको अमोणो भाग ॥"

प्रभु के असीम गुणों पर प्रकाश डालते हुए कवि (वेदा) भी कहते हैं कि हे महापुरुष माधव ! यदि आप एक शरीर के लाख शरीर एक मस्तक पर लाखों मस्तक, एक २ मस्तक के लाखों मुख और एक एक मुख में लाखों जिह्वायें देदें तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकते।

"अंगदिये लाख अँगि-अंगि लख उतमँग,
उतमँग मुख द्यै लाख अनँत।
मुखि—मुखि रसणि दिये लख माहव,
मुणि तो सकां न सुगुण महंत ॥

साईं दास भूला कहते हैं—जिस भगवान केशव का दृढ़ विश्वास कर लिया उस शरीर को कालिमा कभी स्पर्श नहीं कर सकती।

"काठी ग्रहे ओलगत केसव,
तो काठियो न होवत कोड़ ॥"

अतः इन रचनाओं से हमें प्रभु स्मरण, श्रद्धा, ससार से ग्लानि, सच्चीपुकार, प्रायश्चित्त, मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग, प्रभु का भक्त, अभक्त पर प्रेम, प्रभू गुण गान का-असीमता, ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखने से कालिका नाश आदि का ज्ञान हो जाता है।

आत्मोद्धार के लिये यह "भाग" मनन करने योग्य है और ऐसे ही कवि तरण तारण के भक्त ही नहीं उनसे साक्षात्कार-प्राप्त किये हुए ब्रह्म के अंश माने जा सकते हैं, जो स्वयं तर गये और दूसरों के लिये तरजाने का साधन छोड़ गये हैं।

विषय-सूची

भाग १२

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग १२

रचयिता—अज्ञात

—: गीत १ :—

मलण राण परगह सरब वधाया मोतियां,
लार सुर कोड़ तेतीस लाया।
हिंदवानाथ भीमेण री मदत हव,
उदैपुर गोरधननाथ आया ॥१॥

चढै खगराज गजराज चींताग्नां,
देव सुख आरतां मंत्र दीधो।
पदवां तणी ग्रज सारतां जेख पर,
कमन पाधारतां भलो कीधो ॥२॥

हुओ घन ग्रज रसण भजण धावन हुवो,
गग नावन हुवो गुरुदगामी।
हितकर रांण रे भलां थावन हुवो,
नगर पावन हुवो सहस्त्र नामी ॥३॥

भींव रा हवे नरदोख करसी मदां,
दोस मन धारसी तका दलसी।
हुकम आधारसी तकां सुख होवसी,
दुरद रहसी अके द्वार मलसी ॥४॥

अर्थः—तैंतीस करोड़ देवताओं सहित श्री गोवर्धननाथ हिन्दूपति भीमसिंह की सहायता के लिए उदयपुर पधारे। यह देख कर महाराणा ने अपने कुटुम्बियों सहित उन पर मोतियों से भरे थाल न्यौछावर किए।

जो गज के स्मरण करने पर गरुड़ पर आरूढ़ होकर दौड़ पड़े, जिन्होंने दीनों एवं देवताओं को सुखद मन्त्र दिया तथा पाण्डवों की इच्छा-पूर्ति की, वही कृष्ण उदयपुर आए, यह यहाँ के निवासियों के लिए अच्छा हुआ।

हे गरुड़गामी! सहस्रनामधारी!! आपका यहाँ पधारना धन्य है! आपके यहाँ आने से यहाँ की प्रजा ने ईश्वर का स्मरण कर मानो गंगा—स्नान किया हो। महाराणा के हित के लिए आपके यहाँ आने से यह नगर पवित्र होगया।

अब आपकी कृपा से महाराणा भीमसिंह के सामन्त दोष रहित हो जाएँगे। यदि कोई दूषित विचार वाला होगा भी, तो उसका दलन हो जायगा। राणा की आज्ञा में रहने वाला ही सुखी रहेगा। अगर कोई ऐंठ रक्खेगा, तो धूल मे मिल जायगा।

—. गीत २ :—

राजा नँह डंडै चोर नँह रांचै,
रोसे खोसै नहीं रिम।
हर रो नांम अमोलख हीरो,
श्रै तूं हरटै धार यम ॥१॥
ऊनें ठादें लाप — अलीतै,
गल् थल् जाय न छूट गँमै।

भगवत नाम कनक आभूषण,
हिवड़ा मती विसार हमें ॥२॥

मेणां मेर चोर ठग मांगर,
देस बदेस न जोर डर।
गोविंद नाम अमोलख गहणौ,
कंठधार सणगार कर ॥३॥

सखरा करवा दर्खा सांपड़ै,
दीधां मले न लाखां दाम।
अजबा समर जतन कर ईंको,
नीको रतन राम रो नांम ॥४॥

अर्थः—"अजबा" कवि अपने को संबोधित करके कहता है कि हरि का नाम अमूल्य हीरा है, जिसे राजा दण्ड में नहीं ले सकता, चोर उठाने के लिए छिप कर झाँप नहीं सकता और शत्रु क्रुद्ध होकर छीन नहीं सकता। अतः तू उसे हृदय में धारण करले।

गर्मी, सर्दी और अग्नि ज्वाला में भी भगवत नाम रूपी स्वर्ण भूषण गल नहीं सकता, न हाथ से छूट कर गुम ही हो सकता है। अतः हे मेरे हृदय! तू उसे मत भूल।

मीणे, मेर आदि जंगली चोर जातियाँ तथा ठग और मांगने वाले उसे हथिया नहीं सकते। देश विदेश भ्रमण करने पर भी किसी का डर नहीं। ऐसा अमूल्य भूषण गोविन्द का नाम है। इसे कंठ में धारण कर अपनी शोभा बढ़ाले।

अपने को अच्छा बनाना है, तो राम नाम रूपी रत्न दस पुरुषों के पास ही मिल सकता है। लाखों रुपये देने पर भी यह मिल नहीं सकता। अतः तू उसे यत्न पूर्वक रख कर उसका स्मरण करता रह।

रचयिता—आसा बारहठ*

—: गीत ३ :—

मोगे मन माधवे लागी, मदसूदने मुरारे,
नारायणे रामे नरसिंघे, दामोदरे दातारे ॥१॥
सतीभामा रामा हित सगे, सामी रुद्र वंमे,
वर सीतदे रुकमणी, विंदे लिखमी वालंमे ॥२॥
धरणी–धरे धरा दढ धारे, हरे पदम चक्र हाथे,
सक रखणे साईये सेखे, जल–साईये जगनाथे ॥३॥
लका लिय सा नवे ग्रह छोडण,नाथण अहि यह नामे,
रामण तणा दसे सिर छेदे, श्रीरंगे श्रीरामे ॥४॥
केसवे कृमने कल्याणे, कंस मारणे क्रपाले,
वेय ऊधारण वामणे विसने, विठ्ले वनमाले ॥५॥
सामल ग्रमे पील ध्रिणगारे, अहिनायणे अपारे,
'आसा'सामि वलाक्रम अदभुत,अंबर धर आधारे ॥६॥

---

* ये कवि, भक्त ईश्वरदास रोहडिया बारहठ के चाचा थे। ये पहिले मारवाड़ और बाद में सौराष्ट्र, जामनगर के राजा के यहाँ जाकर रहे और सम्मान प्राप्त किया। इनकी बहुतसी रचनायें १७१६ के संग्रह में हैं। राव मालदेव, जोधपुर की महियानी रानी के सती होने के सम्बन्ध में भी उन्होंने कवित्त (छप्पय) रचे हैं।

अर्थः—आशा कवि कहता है कि मेरा मन उस माधव में जा लगा है, जिसे मधुसूदन, मुरारी, नारायण, नृसिंह, दामोदर और दाता कहते हैं।

(जिसे) सत्यभामा और रमा का प्रेमी शिव एवं ब्रह्मा का स्वामी, सीता और रुक्मिणी का पति, श्रीवल्लभ पुकारते हैं।

(जिसे) पृथ्वी को दाढ़ों पर रखने वाला, हाथों में शंख, चक्र और पद्म धारण करने वाला, शेष एवं जलशायी, जगन्नाथ—

लंका विजयी, नवों ग्रहों को मुक्त कराने वाला, काली नाग का नाथने वाला, रावण के दसों मस्तक काटने वाला, श्रीपति और श्रीराम कहते हैं।

(जिसे) केशव, कृष्ण, कल्याण स्वरूप, कमारि, कृपालु, उद्धारकर्त्ता, वामन, विष्णु, विट्ठल वनमाली कहते हैं।

(जिसे) श्याम, ब्रह्म, पीताम्बरधारी, सर्प को नथने वाले, अद्‌भुत बलशाली और पृथ्वी तथा आकाश का आश्रय कह कर लोग पुकारते हैं।

रचयिता—ईश्वरदास बारहट[1]

—: गीत ४ :—

वद पाखे वेद न कीजे, कीधो जिम रामण कीजे।
वद नामी पाखे वीजे, रे लङ्कागद किएही न लीजे ॥१॥

१— ये रोहड़िया शाखा के चारण कवि परम भक्त हो चुके हैं। ये पहले मारवाड़ और बाद में सौराष्ट्र में आकर रहे। इनके रचे ग्रन्थः—"हरिरस" (छोटा-

धोमंतरि धोती धोही, रवि तपिया जास रसोई,
राय-अंगण पवण बुहारै, रै घन रावण थारै वारै ॥२॥
जम राकस जोध जुवाणी, पूठे तस आणे पाणी,
दरबारि विधाता दीसे, रे सोइ बैठो वेद भणीसे ॥३॥
कुबुद्धि कांइ कुमति कमाई, रामण रीसविया रघुराई,
लख पुत्र भत्रीजा भाई, रै गढ़ कीधे लङ्क गमाई ॥४॥

अर्थ—कभी बड़े से विरोध नहीं करना चाहिए। अन्य विशेष प्रसिद्ध वीर कहे जाने वाले भी उसके लंका दुर्ग पर अधिकार न कर सके।

धन्य है उस रावण को, उसके समय में धन्वन्तरि उसकी धोती धोता, सूर्य तप कर उसके यहाँ रसोई पकाता, उसके आंगन को पवन बुहारता (झाड़ देता)।

उसके युवक दानव योद्धा यमराज की पीठ पर उसके लिए पानी लाद कर लाते, उसकी सभा में बैठे ब्रह्मा वेद पाठ करते थे।

ऐसे उस रावण पर दुर्बुद्धि का भूत सवार हुआ जिसने रामचन्द्र को रुष्ट किया और लाखों की संख्या में भ्राता एवं भ्रातृपुत्र होते हुए भी उसने लंका-दुर्ग को गँवा दिया।

बड़ा) आदि हैं। शक्ति विषयक:—"देवीयाण" नामक पुस्तक भी इनकी लिखी हुई है। फुटकर साहित्य भी इनका बहुत मिलता है। "झाला भाला" की कुण्डलियाँ भी इनकी लिखी हुई हैं। जो १७११ के संग्रह में हैं। और इस भाग में दिये गए गीत भी उक्त संग्रह से ही लिये हैं।

—: गीत ४ :—

नरायण कमल-लोचन सामि-सुंदर,
पितंबर — धारी।
श्रवण कुंडल मकर सोभा,
मूरती — बलिहारी ॥१॥

राउ-पंख वाहण रमणि रुकमणि,
पंकज — चक्र पाणी।
गंभीर द्वादस मेघ गरजे,
बेंद चत्र वाणी ॥२॥

कंठ माल तुलसी तिलक केसरि,
चरणधू वामी।
लावन्य कंद्रप कटी लीला,
मालियल मामी ॥३॥

कटि छुद्र मेखल कानि केरट,
सुख मंजल साई।
चप-दस दु अगुल सरब व्यापक,
जाणीयौ न जाई ॥४॥

अष्ट सिधि नव पाउ पलोटे,
भ्रम चमर ढोले।
सिव ब्रम्ह दिगपति द्वार सेवै,
ईसरो नो थोले ॥५॥

अर्थः—हे नारायण ! आप कमल-लोचन सुन्दर स्वामी (श्याम सुन्दर) पीताम्बरधारी और कानों में मकराकृति कुण्डल धारण करने वाले हैं। आपकी इस मूर्ति की बलिहारी है।

हे गरुड़ गामी, रुक्मिणि-रमण एवं पद्म-चक्र धारी ! आपके समक्ष चतुर्मुख ब्रह्मा चारहों मेघों की गर्जना के समान वाणी से वेद पढ़ता रहता है।

हे प्रभो ! आपके गले में तुलसी की माला, केशर का तिलक, वामाङ्ग में, समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी कामदेव जैसा लावण्य, त्रिभंगी नृत्य करती हुई क़मर और ललाट विश्वास दाता (आशा पूर्ण करने वाला) है।

हे प्रभो ! आपकी कमर में क्षुद्रघटिका और कानों में कुण्डल सुशोभित हैं। हे स्वामिन् ! आपकी यह श्रेष्ठ छवि सुखप्रद है। आपका बारह अंगुल का सूक्ष्म रूप सर्व व्यापक है, जिसे कोई नहीं जान सकता।

हे ईश्वर ! अष्ट सिद्धियाँ और नव निधियाँ आपके पैर दबाती, धर्मराज चमर डुलाता, शिव, ब्रह्मा और दिगपाल आपके द्वार पर सेवा करते हैं।

अतः आपका सेवक ईश्वरदास आपकी शरण में है।

—: गीत ६ :—

माधा मात तूं तात तूं प्राण दीवाण मूं,
सरभ तूं सहोदर तूं सखाई।
सगो साजण सयण सामि तूं सांमला,
करम तूं कुटँब तूं कृत कमाई ॥१॥

सांच संतोप म्र धरम तू सोजना,
सहज तूं सील संमाधि सोहा।
वास तूं सास विसरांम तूं वीठला,
मुकँद तूं मनंमथ रत्थ मोरा ॥२॥
गडु तूं ग्रास गुर ग्यान तूं गोविंदा,
गूम्फ गुण गोठ तूं गरुड़ गामी।
नाद तूं वेद तूं भेद तूं नारयण,
नेह तूं निद्धि तूं सहस—नामी ॥३॥
राग तूं रंग तूं रली तूं रामचंद्र,
राज तूं रिद्धि रघुवंस राया।
मंत्र तूं तंत्र तूं मित्र तूं माँहरै,
मंन तूं मोह तूं परम माया ॥४॥
दीन भगतांवछल दुसठ दाणव दलण,
खता लागे नहीं पितां सांल।
ऋत्रियौ हमैं ऊतारि तै ऊतरै,
ईसरो जुगां जुगि तूम्फ ओल्है ॥५॥

अर्थः—हे माधव, हे श्याम ! मेरे लिए माता, पिता, प्राणदाता, सर्वस्व, भाई, सखा, सम्बन्धी, सज्जन, मित्र, स्वामी, कर्म, कुटुम्बी और उपार्जन कर देने वाला एक मात्र तू ही है।

हे विट्ठल—मुकुन्द ! मेरे लिए सत्य, संतोष, धर्म, शील, सुगम-समाधि, स्थान, श्वास, आश्रय, काम स्वरूप और अर्थ (धन) रूप में एक तू ही है।

हे गरुड़गामी गोविन्द ! हे नारायण ! मेरे लिए गढ़, जागीर, गुरु ज्ञान, विशेष गुण, गोष्ठी, नाद, वेद, भेद, नेह और हे सहस्त्र-नाम वाले ! तूही निधि है।

हे रघुकुल शिरोमणि राम ! मेरे लिए राग, रंग, प्रसन्नता, राज्य, रिद्धि, मंत्र, तंत्र मन मोह और महान संपत्ति एक मात्र तू ही है।

हे दीन एवं भक्तों के प्यारे ! तुम्ह परम पिता की गोद में आ जाने के बाद अपराध लागू नहीं होते। अतः मैं ईसरदास आपकी शरण में आया हूँ। तेरे बचाने पर ही बच सकता हूँ, क्यों कि अनन्त युगों तक तूही रक्षक रहा है।

—गीत ७ :—

आखिरे हरि अन्तर जामी,
　　राम भणे रघुनंदन राजा।
　　　　बानर, सेनक आलि करावे,
　　　　　　पाथरे जल बाँधी पाजा ॥१॥

माहव जाणि बंलाणि मयापति,
　　सार संसार पनो स सारे।
　　　　तू न विसारि, मना, मुख आतम,
　　　　　　तारि मया घण दुत्तर तारे ॥२॥

बाम्हण वेद स भेद सही विधि,

वेद स भेद सवे सुख दायक।

कंटक जेणि वहे मधकंटक,

नाम प्रणाम नमो सुरनायक ॥३॥

ए अविलंब विलंबण ईसर,

गावये राम तणे गुणि गीजो।

बंध सुबंध अछे बलि बंधण,

रंध सुबंध नहीं कोइ बीजो ॥४॥

अर्थः—रघुकुल नरेश रामचन्द्र को मैंने तभी से अन्तर्यामी हरि मान लिया, जब सुना कि उन्होंने वानर सेना एकत्रित की है और जल पर सेतु की रचना कराई (पानी पर पत्थर तैराए)।

हे आत्मा ! कृपालु माधव को पहिचान ले और संसार में तत्व स्वरूप मान कर उसका प्रशंसा-गान करता रह। तू उसे मन से न भूल तथा उसके नाम को जिह्वा से दूर मत कर, क्योंकि वही तारने वाला है। उसने बहुत से पतितों का उद्धार किया है।

वेदादि में सगुण-निर्गुण आदि का उल्लेख हुआ है, उसे छोड़ कर वेदों का मुख्य भेद ईश्वर ही मानले और कंटक स्वरूपी मधुकैटभ दानव के नाशक ही सब देवों के स्वामी हैं। उसी का ही स्मरण किया कर।

ईश्वरदास कहता है कि तत्काल सहारा देने वाला भगवान रामचन्द्र ही है। उसके गुणों पर प्रसन्न होना चाहिए, जो बलि को

बन्धन में लेने वाला और सेतु की रचना करने वाला है। उस दीन बन्धु के समान अन्य कौन हो सकता है ?

—: गीत ८ :—

श्रीरंग साँवलो श्री मानसरोवर,
भाव तणे जल भरियो।
मोरो हंस रमे तिण मांही,
पाप संग परहरियो ॥१॥

गई त्रिखां त्रिसना मल गलिया,
नरक ताप मो नांही।
लहरां लिये परम रस लेणो,
मुकन सरोवर मांही ॥२॥

जे मांही सुक जेहा जोगी,
रमे रयण दिन राता।
परम निधान सरीर पखाळे,
गोरख जिसा गिनाता ॥३॥

अन पखिया मखे ता ओ जल,
देखंता हीं दोरो।
ग्रभत वचन श्रवण साम्हलतां,
सदगत हंसा सोरो ॥४॥

लाछ-प्रवार लील लहरी रव,
तव पाप भो टालो।
ईसर तणो रमे ते आतम,
प्रभ ज्ञान विचालो ॥५॥

अर्थः—हे श्रीपति साँवरे ! आप मान सरोवर तुल्य हैं, भाव रूपी जल से आप परिपूर्ण हैं। मेरा हंस रूपी प्राण पखेरु पाप कर्म छोड़ कर आप में रमण करता रहता है।

हे सरोवर रूपी मुकुन्द ! आपकी लहरों में जलपान करने से अब तृष्णा मिट गई है, मल का भी नाश हो गया है और नर्क की गर्मी दूर हो गई है।

हे सरोवर रूपी प्रभो ! आप में शुकदेव जैसे योगी रात दिन रमते हैं और गोरखनाथ जैसे परम ज्ञानी महात्मा अपने शरीर का प्रक्षालन करते हैं।

हे प्रभो ! पक्षहीनों को मार देने वालों के लिए आप में भरा हुआ भाव रूपी जल दुःखद है और आपके महत्त्व को जो केवल मात्र से जान गया है, उसे यह सद्गति देने वाला और सुखप्रद है।

"ईसरदास" कवि कहता है कि हे तरंगित सरोवर तुल्य लक्ष्मीपति ! आप ऐसा करें, जिससे मेरी आत्मा आप में रमण करने लग जाय और पाप के ताप से छुटकारा पा सके।

रचयिता ओपा आढ़ो

—: गीत ६ :—

हुतो तीर दरियाव रे पानसे हातरी,
हर बना ऊबारे कवण हाथी।
सुख तणा सँगाती ओर साराई सको,
सांवलो अमूजण तणो साथी ॥१॥

असुर संहार प्रहलाद ऊबारियो,
पति ना मथन-तनम तेण परचे।
हरणाकुस वरचियां थको पचतो हुवो,
वचन मोपे धणी नोज वरचे ॥२॥

संदूका द्रोपदी तणा हेला सुणे,
आप आवे असी भाँत आयो।
पति नेड़ा हुँता दुक्ख नो पालियो,
धणी अलगो हुँतो तके धायो ॥३॥

मानको सुधारे अने पामे भगत,
दईव सु सवारथ सधे दोई।
ओपला जीतवा तणो ओसर अवर,
कानवा जसो नँह सगो कोई ॥४॥

---

१. ये कवि सिरोही प्रान्त के पेछुवा के करतारामजी के पुत्र थे। ये चारणों की आढ़ा शाखा के थे। इनकी रचना फुट कर साहित्य, ईश्वर सम्बन्धी व औपदेशिक तथा नीति सम्बन्धी विशेष मिलती है। इस कवि का १८०० के अन्तर्गत होना पाया जाता है।

अर्थः—जहाँ हाथी समुद्र के मध्य में ग्रसा जा रहा था, वह स्थान तट से पाँच सौ हाथ की दूरी पर था, उस समय उस हाथी की रक्षा कौन कर सकता था ? सब सुख के साथी हैं, केवल एक मात्र हरि ही दुःख का साथी है।

हिरण्य नाम जो विष्णु जगदीश्वर हैं, उनका क्या परिचय दूँ ? उन्होंने हिरण्यकशिपु का संहार कर प्रह्लाद को बचा लिया। शत्रु के ललकारने पर उसे भक्षण कर गए। अतः आशा है कि मेरी पुकार वृथा न जायगी (मुझ से छल नहीं करेंगे)।

मैं ईश्वर की प्रशंसा कहाँ तक करूँ, दुःखिनी द्रौपदी की पुकार सुन कर उन्हें शीघ्र आना चाहिए था। इसीलिए शीघ्र पहुँचे। द्रौपदी के पति समीप होते हुए भी उसके दुःख का कारण बने और जगत्पति दूर होते हुए भी शीघ्र आ उपस्थित हुए।

"ओपा" कवि अपने को सम्बोधित कर कहता है कि कृष्ण के समान कौन सम्बन्धी (प्रेमी) हो सकता है ? वह देव मनुष्य जन्म को सफल बना मोक्ष पद देता तथा उसी की कृपा से स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों का साधन हो पाता है। अतः जन्म सार्थक करने के लिए आगे कोई अवसर नहीं मिलने का है (इसलिए तू अभी से सँभल जा)।

—: गीत १० :—

दलड़ा समझ रे सगलो जग दाखे,
पछे घणो पछतासी।
पूरब जनम थूं कद पामेला,
गुण कद हर रा गासी ॥१॥

रचयिता—कान्हा बारहठ[1]

—: गीत १३ :—

सुर कोड़ि अवर तेत्रीसइ सरवर,
बलि छिलरे छत्रीसइ वंश।
हरी नांउ मानसरोवर हूंता,
हुए म दूरि अम्हीणा हंस ॥१॥

पांणी हीण अवर सरे परहरि,
परहरि अनि सुर नर भूपाल।
श्रीरंग तणौ नाम पावासर,
मेल्हे मत मन मूझ मुणाल ॥२॥

आपणौ भलै तणा ऐ आरिख,
अनि सर सुर न कीजे आस।
हरि मानसरि वसे सुवाइ हंस,
वसियै जेणि टलै ग्रभवास ॥३॥

कान्हियो कहे अवर चीतिसी कोइ,
धोखा करि सिरहि सिर धूणि।
प्राण परमहँस पुणवि प्रमेसुर,
चुगि हरि सुजस रसायण चूणि ॥४॥

---

१. यह कवि बारहठ शाखा के चारणों में हुए है। इनके स्थान के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह कवि भी १७ वीं शताब्दि के अन्तरगत होने चाहिएं, क्योंकि इनके गीत १७१६ के संग्रह में से लिए गए है। यह संग्रह साहित्य संस्थान में है।

अर्थः—तैंतीस करोड़ देवता साधारण तालाबों तथा छत्तीस ही शाखा के क्षत्रिय तलाइयों के तुल्य हैं। अतः हे आत्मा रूपी हंस! तू मानसरोवर रूपी हरि नाम से दूर मत रहना।

हे मेरे मन-मराल! जल रहित तालावों के समान अन्य देवता, नर और नृपालों को छोड़कर पाबासर रूपी लक्ष्मीपति को तू मत भुलाना।

हे आत्मा रूपी हंस! अपनी भलाई चाहता हो तो, तालावों रूपी दूसरे देवताओं की आशा न कर मरने पर भी मानसरोवर रूपी हरि की शरण ग्रहण कर, जिससे तू पुनः जन्म न लेवे (आवागमन से बच जाय)।

कान्ह कवि (अपने को ही) कहता है कि यदि तू धोके में आकर अन्य का चिन्तन करेगा तो अन्त में मस्तक धुनेगा। अतः हे मेरे प्राण पखेरु हंस! तू तो ईश्वर के समक्ष मस्तक झुका कर हरियश रूपी रसायन (मुक्ता) चुन २ कर खाता रह।

—: गीत १४ :—

जिणि मानव जनम किया करिया जम,
जीहां दीन्ही करण जस।
पुणी यतजोड़ परम जस परहरि,
पुणे स सुजस ताइ वडा पस॥ १॥
जिणि सिरजिया जीह दीन्ही जिणि,
वलि कीय जिणि गुण कहावण वणि।
जगदातार मेल्हि जग जीवणि,
जस अनि जपैस पस जणि॥ २॥

देहां मानव जनमज देयण,
दाता सोजि वडौ दत दैंज ।
गोविंद गुणा विणा गुण गाए,
सगुणाइ निगुण गिणेवा संज ॥ ३ ॥
विना अनंत अनंत जस वदियै,
त्रिहुं अणि अवण गिणे चौताइ ।
केसव जस ताहरो करावे,
कान्हियौ रखे पसु कहाइ ॥ ४ ॥

अर्थः -जिस परमेश्वर ने मनुष्य जन्म और जिह्वा उसका यशोगान करने को दी है, उसके समक्ष करबद्ध हो, उसका यशोगान न कर अन्य का यश गान करने वाला तो महान् पशु तुल्य है।

संसार के भरण-पोषण करने वाले जिस प्रभु ने सृजन कर जिह्वा दी और गुणिजन (कवि) वंश मे जन्म दिया, इतने पर भी जो उसे भूल कर सांसारिक जीवों का यश गान करता है, वह तो संसार में पशु समान है।

मानव शरीर में जन्म देने वाला गोविन्द सब से बड़ा दानी है, उसका गुण गान न करने वाला पुरुष गुणवान होते हुए भी मूर्ख है।

जिस प्रकार दूसरे मनुष्य, अनन्त प्रभुको छोड़ अन्य बहुत सों का यश गान करते हुए तीनों अवस्था (बचपन, युवावस्था तथा बुढ़ापा) बिताते हैं, उस प्रकार हे केशव ! ऐसा न हो कि मैं आपका भक्त, पशु कहा जाऊँ। मुझ से तो एक मात्र अपना ही यशगान कराते रहना।

—: गीत १५ :—

मन सूअटौ मूझ बिलाई माया,
मिलियां दाढां विचै मन।
करां पुकार लीजतौ केशव,
किणि परि ऊबारिसि क्रसन ॥ १ ॥
मन पर बतौ गहांणो मोगे,
मंजारी गिह तणै मुखि।
विलम्ब म करि गज ग्राह विछोड़ण,
दौहीजैज तणे दुखि ॥ २ ॥
माया मिनी सुवौ लीजे मन,
बाहर कीजै लिखमीबंद।
मुखि ग्रहयौ न छुडावे मूना,
गिलियो किम छडविसि गोवींद ॥ ३ ॥
कान्हियौ कहे मोखि करुणाकर,
विलंब करिसी तौ वात वरां।
माया काल मंजारी मुहंडे,
करदीजतौ पुकार करां ॥ ४ ॥

अर्थः—हे कृष्ण ! सूआ रूपी मेरा मन बिल्ली रूपी माया के मुख की दाढ़ों में जा पड़ा है। अतः आप से पुकार करता हूँ, आपके अतिरिक्त अन्य कौन बचा सकता है ?

हे ग्राह से गज को मुक्त कराने वाले ! अन्य के बुलाने पर बोलने वाला (सूआ रूपी) मेरा मन बिल्ली रूपी माया ने गृह-धन्धे

के मुख में पकड़ लिया है। अतः कष्ट के समय आप विलम्ब न करें और दौड़ कर सहायता करने में विलम्ब करेंगे तो मुझे दुःख होगा।

हे लक्ष्मी पति गोविन्द! बिल्ली रूपी माया ने सूए रूपी मन को पकड़ लिया है। अतः आप सहायता करिए, नहीं तो यह निगल जायगी, फिर कैसे छुड़ा सकोगे?

हे करुणाकर! कान्ह कवि को मुक्त करदे। देर करने पर बात बिगड़ जायगी; क्योंकि काल स्वरूप बिल्ली माया रूपी मुख से चबाने ही वाली है, यह आप से पुकार करता हूँ।

— गीत १६ —

मो ऊपरि बुरौ म मानसी माहव,
तै श्रौ त्रिद ग्रहियो सतणि।
अपराधी अगि ऊधरिया,
गुणियां तिण आयो सरणि ॥१॥

कदरज अजामेल रे कानै,
मेलण मूफ विलागी खांति।
सरण आवियां पछै प्रमेस्वर,
पापियां तणी कसी दोइ पांति ॥२॥

पावन पतित तणो पुरुषोतम,
किम ओरवियौ बिरद कहाइ।
अपराधी मोहूं अधिकेरो,
कोइज हुवे तो धीज कराइ ॥३॥

आगै घणा पतित उद्धरते,
हेक विरद वसि कीयौ हरि।
वीजोइ वले चढै वहनामी,
कान्हियौ पावन लियौ करि ॥४॥

अर्थः—हे माधव ! मेरे कहने पर बुरा मत मानना, क्योंकि "अपराधियों के उद्धारकर्ता" आपके विरुद हैं, इसी के अनुसार आपने पहले कितनों का ही उद्धार किया है। यह सुन कर मैं भी शरण में आया हूँ।

हे परमेश्वर ! आपने अजामिल से पापी का उद्धार कर सम्मान किया। आपके इस विरुद को सुन कर मेरा मन भी निर्भय हो सांसारिक खेल खेलने लगा; परन्तु अब आपके चरणों की शरण में आगया हूँ; क्योंकि पतितों का उद्धार करने में आपके सामने कोई भेद-भाव नहीं देखा गया है।

हे पुरुषोत्तम ! आप पतित-पावन हैं, यह विरुद अन्य पर नहीं फबता। मुझ से कोई विशेष अपराधी आपको नहीं मिला होगा। मिला हो तो आप विश्वास दिलाइए।

हे हरि ! आपने पहले कितने ही पतितों का उद्धार किया। आप के 'पतित-उद्धारक' विरुद ने मुझे मोहित कर लिया। हे विविध नामधारी ! मुझ कान्ह कवि को पावन कर आपने अपने पुरातन विरुद में विशेषता ला दी।

—: गीत १७ :—

चढती पग भरे परबतै चींटी,
चितवौ तेरौ सैंचल विचार।

काइ सांभलो नहीं करुणाकर,
प्रगड़े सादे करां पुकार ॥१॥
किम सांभलो तणा माकोड़ी,
पग धरती वाजे खड़ पांन।
मोसों किसी कू नजरि माहव,
करुणा करा न मांडो कांन ॥२॥
कीड़ी तणा सांभलो कांने,
पग रा द्रमका अपरमपार।
हरि दुख हरण अम्हारा हेला,
केम स विलँगमो करतार ॥३॥
कान्हियो सबद जर्ब्बतो कादै,
तन प्राजळे त्रिविधि गुण त्राप।
कांने सरवां सदा कहीतो,
बहरो रखे कहाड़ै बाप ॥४॥

अर्थ—हे करुणाकर! पर्वत पर चलती हुई चींटी के पैरों की आवाज आप ध्यान पूर्वक सुनते हैं, तब क्या कारण है, कि उच्च स्वर से मैं पुकारता हूँ और आप नही सुनते।

हे माधव! चींटी के चलने पर घास व पत्ते बजते हैं, उसे तो आप सुन लेते हैं; परन्तु मुझ पर आपकी कुदृष्टि क्यों है? (क्या कारण है) आप करुणाकर होकर मेरी पुकार पर कान भी नहीं लगाते।

हे दुःख हर्ता हरि! आप चींटी की पग-ध्वनि तो सुन लेते हैं, और क्या कारण है, कि मेरे उच्च स्वर से पुकारने पर भी विलम्ब करते हो (अथवा कहीं रुक गये हो।)

मैं कान्ह कवि ये शब्द जलता 'कुढ़ता' हुआ कह रहा हूँ: क्योंकि मेरा तन त्रिताप से जल रहा है। आप में सब कुछ सुनने की शक्ति विशेष बताई गई है, तथापि परमपिता कहलाए जाने वाले आप इस समय बधिर कैसे बन गए हैं?

—: गीत १८ :—

पोकार महाउत करै प्राणियाँ,
साहिब दियौ सहाउन साथि।
मन गुर शबद आंकुस न मांनै,
हसती मदोमत नावै हाथि ॥१॥
पीलवांन परि जीउ पुकारै,
नागपत्र दरबारि नित।
समरथ तणी न बाम्है सांकल,
चंचलाई मद वहै चित ॥२॥
राजि दुवारि पुकारै राघव,
पाट हँस डरतो महावत।
काया नगरि दखल अति कीधो,
मन छूटो हसती मसत ॥३॥
कान्हियो कहै पुकार करंतां,
गोविंद किम छुड़जै गहन।
माहरवते न बाम्है माहव,
मद वहतो हाथियो मन ॥४॥

अर्थ.—हे स्वामी ! महावत रूपी प्राणात्मा आप से पुकार करता है कि आप सहायक रुप में साथ दीजिए, क्योंकि मस्त हाथी रूपी मन, ललकार और अंकुश को लोप कर वश में नहीं होता।

हे नारायण ! आपके दरबार में महावत रूपी जीवात्मा सदा पुकार करता रहता है कि मदोन्मत्त चंचल हाथी रूपी चित्त, स्मरण रूपी शृङ्खला से बांधा नहीं जाता और मनमाना विचरण करता है।

हे राघव ! आपके राजद्वार पर महावत रूपी आत्मा पुकार करता है कि मस्त हाथी रूपी मन, बन्धन मुक्त होकर काया नगरी में मन माना उत्पात मचा रहा है।

हे गोविन्द ! कान्ह कवि आपसे पुकार करता है, आप चुप क्यों हैं ? हे माधव ! इस महावत रूपी आत्मा के बन्धन में, यह मद चुवाता हुआ हाथी रूपी मन नहीं आता।

—. गीत १६ :—

दियण लंक गढ विभीखण कनक ग्रिह सुदामा,
दान अनि किसा जौं मुगति दातार।
घडी जेती तिता सून मूं भक्ति घणा,
क्रिया मैं तके तूं वर्कास करतार ॥१॥

तारिया अजामिल सारिखा पतित तैं,
तिणि क्रियै करां पौकार तूनां।
पहर हेकणि असट सून विचि प्राणियौ,
मैं ज. बांधौ छंडणि तूहीज मूना ॥२॥

'आप आधक जिसी खम्या कीजै अनंत,
मूढ मन तणै म विचारि मोर्‌यै।
वगसिहो वगसिहो वगसि वलिबंधण,
चत्र पहर तणै बत्रीस चोर्‌यै ॥३॥
कान्हियौ तुझसौं करम कीये कपट,
आवि जाचे वळे तु हिज आगै।
अनंत करि मून वलि इवो मांगा अनंत,
मरां लेखो रखे तार मांगै ॥४॥

अर्थः—हे स्रष्टा! आपने विभीषण को लंका और सुदामा को स्वर्णिम-गृह दिया। ऐसे दान में कोई विशेषता नहीं, आप तो मोक्षदाता हैं। मैंने घड़ी २ में बहुत से अपराध किए हैं, वे सब आप क्षमा कर दीजिए।

हे प्रभो! आपने अजामिल जैसे पतित का उद्धार किया। अतः आप से मैं विनती करता हूँ कि मुझ प्राणी ने एक प्रहर में आठ २ अपराध किए हैं, फिर भी (आशा है कि) आप ही मुझे बंधन मुक्त करेंगे।

हे वलि को बन्धन में लेने वाले अनन्त प्रभो! आप मेरे मूर्ख मन की ओर न देखें, आप आदि से क्षमा करते आए हैं, उसी प्रकार (मुझे भी) क्षमा करिए। मैंने चार २ प्रहर में बत्तीस अपराध किए हैं; परन्तु आप अवश्य क्षमा करेंगे।

हे ईश्वर! कान्ह कवि ने कर्म बन्धन में पड़ कर आप से कपट किया और आप से ही क्षमा याचना करता है। मैंने तो अनेक अपराध

किए हैं; किन्तु मरने पर आप उस बात को भुला दीजिए और मुझे मत दीजिए।

—: गीत ३० :—

हलरे मन मूढ तरुणपण हूँतै,
जोइ जगदीश न भजियाँ जाणि।
न्याइ है नीर झरंते नयणे,
नर ताइ सिर धूणै निरवाणि ॥१॥

जोव्रण सु तण तणौ सुख जांणे,
जे आणियों नहीं जगदीश।
पांणी चखे वहंते व्रधपणि,
सुज्र पांतरिया धूणै सीस ॥२॥

वासर घणा तरुण पण वाला,
बोलब्रिया हरि भगति विणि।
दुख तिणि नयण झरै डोकरपणि,
उतमँग धूजै दुख उवणि ॥३॥

काया पहडती पहिलो कान्हा,
कांइरे जस न कहे कुमन।
नीर त्रिधार आँखियां नाखिसि,
मायो धूणिसी पछै मन ॥४॥

अर्थः—हे मूर्ख मन! तू तारुण्य के विनोद से दूर रह, यदि तू जगदीश्वर को जान कर के भी उसका जप नहीं करेगा, तो अन्त में

मोक्ष के लिए (ऐसा नहीं करने वाले मनुष्य के समान) आँसू बहायगा और मस्तक धुनेगा।

सुन्दर शरीर में तू यौवन को मुख्य रूप मानता है (अथवा पुत्र सुख मानता है) परन्तु याद रख, यदि तूने ईश्वर को नहीं पहचाना, तो बुढ़ापे में आँसू बहायगा और उसे भुलाने पर मस्तक धुनता रहेगा।

हरि की भक्ति के बिना यौवन के बहुत से दिन गँवा देने पर बुढ़ापे में नेत्र झरते रहेंगे और उसी दुःख से मस्तक डगमगाता रहेगा।

कान्ह कवि कहता है कि हे मन ! शरीर छोड़ने से पहले कृष्ण का कुछ भी तो यशोगान कर, नहीं तो आँखों से तीन २ धारा आँसू टपकायगा और पछता कर मस्तक धुनेगा।

—: गीत २१ :—

केकाम न कामणि हीर न कंचन,
नीर न भोजन सेझ न नाद।
परम निधान अमी जम परहरि,
सिगळै बिख सारिखा सवाद ॥१॥

पर्वंग ग्रीया रम वसत्र न परिमल,
लहि जल अंन न तलप लगे।
मार्थे नींद सुवा जग माहब,
नदर जिमां माखियौ जग ॥२॥

अति द्रब वसत्र न परिमल आइत,
महल मानव्रण सुन्दरि मृथ।

राम तणौ गुण अमो रसायण,
दूजो आक तणौ सह दूध ॥३॥
अमर अमृत जण हुवा अगैं है,
विसन अमृत सोईज ग्रहि वाणि।
कया सवादज करै कान्हिया,
जितूं वैसरिस छमासी जांणि ॥४॥

अर्थः—प्रभु के अमृत तुल्य यश को छोड़ देने पर घोड़े, स्त्री, हीरे, सोना, अन्न-जल, शय्या और राग रंग ये सब विष तुल्य हैं।

माधव का यशोगान ही अमृत तुल्य है। घोड़े, स्त्री-प्रेम, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, अन्न-जल और पर्यंक आदि सांसारिक सुख-सामग्री हलाहल के समान है।

एक मात्र राम का गुण-गान ही अमृतमय रसायन है। शेष-तलवार, द्रव्य, वस्त्र सुगन्धित पदार्थ, लगान लेना, सातखंडे महल और मुग्धा सुन्दरी आदि आक के दूध के समान हैं।

विष्णु का नाम ही अमृत है, जिसे जप कर पहले कई अमर हो चुके हैं। उसी का वाणी द्वारा जप करता रह। कवि अपने आप को संबोधित करता है कि हे कान्हा! अन्यत्र कहीं भी स्वाद नहीं। प्रभु-स्मरण बिना तू एक दिन को भी छः महीने के समान बड़ी कठिनाई से बीतने वाला समझले।

—: गीत २३ :—

हय सात पछेड़ी भागी हांडी,
जीमण अधपा चून जिम।

जां मिलि हगि भुलैछै जीवड़ा,
अनमन ले काढिस्ये इम ॥१॥

वसत्र पांच गज फूटो वासण,
काढिस्ये मुसटी चून करो।
प्रीत किसी तांसो रे प्राणिया,
पढि घरसैं काढिस्यैं परो ॥२॥

फूटड़ो वसत्र तोलड़ी फूटी,
आटो मूठी खरच अधै।
डोलि लगे सगपण मनि जाणे,
छोति कियो काढिस्ये पछै ॥३॥

रे भगवंत विसा कुण थारो,
आतमध्यान विचार इसौ।
धाति अगनि मांहि मारे धोंके,
काल्हिया ताहूं नेह किसौ ॥४॥

अर्थः—हे जीव ! अंत में सात हाथ की पछेवड़ी (कफन) ओढ़ा, फूटी हँडिया हाथ में लेकर, आगे हो, पिंड के लिए आध पाव चून निकाल, तुझे मुर्दा मान छूत के विचार से भूले रह तेरे कुटुम्बी तुझे घर से बाहर कर देंगे।

हे प्राणी ! उनसे क्या प्रीति जो अन्त में पाँच गज वस्त्र से ढाँक-कर, फूटा बर्तन आगे ले, पिंड के लिए एक मुट्ठी चून (आटा) खर्च कर तुझे घर से निकाल देने वाले हैं।

खाइसि तौ जाइसि त्रिण खूटी,
रोगीयां गरस विषय रस ॥२॥
प्राणीया पीयँ लियँ मत परसे,
देखि सुरा पल परा दखि।
काढो कृसन नाम छांडे कांइ,
कहतां जो जाइसि कुपछि ॥३॥
तन जोग विहारि वणौ कीरतनि,
कान्हिया तो रहिस्यै कुसलि।
रखे लियँ संसार तणौ रस,
रसियौ जाइसि रसातलि ॥४॥

अर्थः—संयमी होकर सदा राम-रस पीने को तय्यार रहना चाहिए। इसी से आत्मा का उद्धार हो सकता है। यदि मदिरा, मांस और पर स्त्री का उपभोग किया, तो अन्त में रोग ग्रस्त होकर मरेगा।

यदि कोई पीना चाहे तो औषधिरूपी कृष्ण-यश-गान का पान करे। इसके विपरीत कोई सांसारिक रोगों में ग्रस्त हो विषय-रस का पान करेगा तो उससे तृप्त भी न होगा और अन्त में संसार से जाना पड़ेगा।

हे प्राणी! न तो मदिरा पी और न मांस (सेवन कर) तथा चतुर भी हो तो भी पर स्त्री का स्पर्श न कर। मुख से कृष्ण नाम कह, उसका त्याग न कर। (कृष्ण नाम) कहते ही विषय रूपी कुपथ्य के कारण उत्पन्न हुए समस्त सांसारिक रोग मिट जायेंगे।

कवि अपने को सम्बोधित कर कहता है:—हे कान्हा कवि! शरीर को योग में रमा दे और कीर्तन तथा जप करने वाला बन,

इसी में कुशल है। यदि सांसारिक रसों का स्वाद लेकर रसिक कहलाया तो रसातल में चला जायगा।

—: गीत २५ :—

आजोको रांम इसें क्यौ आरंभि,
मछर घणे प्राजळे मुख।
पाणी सिरे तरावे पाथर,
रामण मौढण तणी रुख ॥१॥
राजा राम ऊपरी राखे,
आज मछर दाखे अनिमंध।
बांधो पाज तेम कांइ बांधे,
काइ मौढे छेदे दसकंध ॥२॥
भृकुटस उज्जल दसरथ संभव,
भुजीया दीसै भूजुबल।
जल सिरि तिम चलीया दल जाए,
दससिर समिजै सहित दल ॥३॥
वाहर सीत तणी सीतावर,
वणिया दीसे लील विलास।
पहिला जिम चुणिसै जलि पाथर,
पछे चुणीस्यै सीस पलास ॥३॥
पहिवा रामण सीत वालिवा,
उपरि समद्र कियौ इलगार।

कान्हीयाँ कहै अनंत संकियै किम,
वणित अनूप अनत तिणिवार ॥४॥

अर्थः—हे रामचन्द्र ! आप इस प्रकार क्यों चढ़ाई कर रहे हैं ? आप में आज मस्ती (उमंग) और मुख पर विशेष तेज छाया हुआ है। ज्ञात होता है, आप जल-निधि पर तो पत्थर तैरायँगे और रावण को डुबो देंगे।

हे राजा रामचन्द्र ! रावण का नाश करने के लिए आज बड़े उन्मत्त हो गए हैं। जिस प्रकार आपने (समुद्र पर) सेतु का निर्माण किया, उसी प्रकार आप दशकंधर (रावण) के मस्तक काट कर उन्हें (समुद्र) में डूबो कर एक दूसरा सेतु रच देंगे।

चम चमाते हुए भाल वाले हे दशरथ नन्दन ! आपकी भुजाएँ सर्प के समान हैं, उनके बल पर (समुद्र के) जल पर होकर आपने अपनी सेना को बढ़ाया। यह निश्चय है कि आज आप रावण को उसकी सेना समेत डुबो देंगे।

हे सीता पति ! सीता को लिवालाने को आने पर आप में रण-क्रीड़ा का उल्लास ऐसा दिखाई देता है, मानों आपने जिस प्रकार सेतु की रचना की, उसी प्रकार इन मांसाहारी दानवों के मस्तकों द्वारा एक और सेतु की आप रचना कर देंगे।

कान्ह कवि कहता है:—हे अनन्त प्रभो ! आपने रावण का नाश करने और सीता को ले जाने के लिए समुद्र पर पत्थरों और दानवों के शवों के जो ढेर लगा दिए (दो दो सेतुओं की रचना करदी) आपके उस समय के वीर स्वरूप का वर्णन कैसे किया जाय (वह तो वर्णनातीत है)।

—: गीत २६ :—

अरमें घण मयण घणू का मसिवन,
ग्यान हीण रंग अके ग्रहे।
चित ज्यां हेत सहित हरि चरणे,
राता ताइ ऊजला रहे ॥१॥

जोवण सघण बूंद मिदिया जल,
दीसै मसिवन मुख दईव।
रग हरि गुणा किपी त्यां रहिया,
जग चिहुर सारीखा जीव ॥२॥

रतिराउ रखै न रंगि जाइ रीधा,
करी कसप्रस वसि करि कुसन।
कालिक केस लगै ते कीधा,
मन जे त्यां ऊजलां मन ॥३॥

कालि पुड़ङ्ग तरुणपण कान्हा,
नाउ हरि विण भीनाज नित।
विप्र पण होभतै घणू विसेसै,
चिहुँर सेत मसिवरन चित ॥४॥

अर्थः—घन तुल्य यह कामदेव विशेष रूप से स्याही के समान श्याम वर्ण बरसता है, उसमें रंगे जाने वाले ग्यान हीन हैं; परन्तु जिनका चित्त प्रेम पूर्वक हरि चरणों में लीन है, राता (अनुरक्त, लाल) होते हुए भी उज्ज्वल हैं।

यौवन रूपी गहरी बूँदों में भीने हुए मनुष्यों के मुख काले दिखाई देते हैं; परन्तु जो हरि के रंग में रंगा हुआ है, उसका जीवन बुढ़ापे के केशों के समान उज्ज्वल है।

रतिपति (कामदेव) के रंग में सने हुए लोगों ने कुयश के कारण अपनी काया को काले रंग से पोत दिया। किन्तु जिन्होंने काले केश होते हुए (जवानी में) भी अपना मन हरि की ओर लगा दिया, उनका मन उज्ज्वल (पवित्र) है।

"कान्हा" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि यह तारुण्य जाने वाला है, यदि हरि के नाम में सदा लीन न रहा तो बुढ़ापे में केश श्वेत और मन काला होने से लोगों को तू बहुत बुरा दीखेगा।

रचयिता–कर्मसी आशिया[1]

—: गीत २७ :—

ईखे अंगि एह करामत ईसर
थर कोतक त्रहूँलोक थयै।
मांडे आप रहण मेदाने,
दाने नो गढ़ लंक दिये ॥१॥

देखे रूप भुयण त्रिहुँ दानी,
प्रम ये तोरो अगम प्रताप।
आपे गज हैमर थोलगुआं,
ऊपर चढ़ै ओढिये आप ॥२॥

---

१ यह आशिया शाखा के चारण कवि थे। ग्राम पदूँदा और कड़ियाँ (मेवाड़) के आशियों के पूर्वज थे। जिनका विशेष उल्लेख प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ८ के टिप्पण में दिया जा चुका है।

अहि मानव सुर ईस कहै इम,
भामी ईस तुहारा भेस।
सोवन माल देयै सेवगुवां,
आप गले गलमाल अलेख ॥३॥

सुर मण्डल हैरांनि हुआ महि,
हर तूं केम करामत हाक।
अमरत खीर ग्रवे ओलगुवां,
आप अहार धतूरो आक ॥४॥

एकणि रहण अहो निस ऊगां,
दाखव जीह सुजस ते देव।
पत्र ले आप कमलि, ले परठे,
सिर छत्र धर करतां सेव ॥५॥

अर्थः— हे शिव! आपके चमत्कार को देख कर तीनों लोक चकित हो जाते हैं; क्योंकि आप जंगल में निवास करते हैं तथा अपने भक्त (रावण) को लंका जैसा दुर्ग (रहने के लिए) दान में दिया है।

हे महान् दानी प्रभो (शंकर)! आपके दान देते समय के स्वरूप और अपार प्रताप की प्रशंसा त्रिभुवन करता है। आपका स्मरण करने वालों को आप हाथी-घोड़े देते रहते हैं और आप स्वयं बैल पर चढ़ते हैं।

हे ईश! सुर, नर, नागादि देख कर यह कहते हैं कि आपके इस स्वरूप का सब को विस्मय है। आप अपने सेवकों को स्वर्ण मालाएँ

देते रहते हैं और आप स्वयं मृतप्राणियों की मुण्डमाला धारण करते हैं।

हे शंभो! आपके चमत्कार को देख कर पृथ्वी सहित समस्त मण्डल विस्मित होता है। आप अपने इच्छुकों को अमृत तुल्य क्षीर भोजन देते हैं और स्वयं आक धतूरे का आहार करते हैं।

हे महेश! आप सदा एक ही वेश में रहते हैं। अतः आपका यश प्रत्येक की जिह्वा पर बसा हुआ है। आप अपने मस्तक पर केवल भक्तों द्वारा (बिल्व) पत्र धारण करते रहते और अपने सेवकों के मस्तक, राज-छत्र से सुशोभित कर देते हैं।

रचयिता–गुलजी आढा

—: गीत ८८ :—

पूछे की वेद हकीमा पाछे, नाड़ दखाड़े भाल नळे।
जाणू साँच जीवना जासी, हुकम बना नँह पान हले ॥१॥

सुख दुख लाभ अलाभ देह सँग, आमट मटे कह वैद अगै।
जुग लग मांन धानंतर जेहा, लगा राह जे क्यू न लगे ॥२॥

यो नज मंत्र राम मुख आखो, सिव कहिहो धारियो सुवा।
बरसे दरद नह रहे बाकी, दरद किये सोई किये दुवा ॥३॥

अर्थः—हे मानव! वैद्य-हकीमों के हाथ में हाथ देकर नाड़ी दिखाना वृथा है। मैं तो यह सत्य मानता हूँ कि ईश्वर की आज्ञा के बिना वृक्ष का पत्ता भी नहीं हिलता। अतः उनकी कृपा है, तब तक जीवका शरीर से विछोह नहीं हो सकता।

सुख-दुःख, लाभ-हानि ये सब शरीर से लगे हुए हैं, जो अमिट हैं। वे वैद्यों से नहीं मिट सकते। इसलिए मान्धाता जैसे ने भी जिस (हरि स्मरण के) मार्ग का आश्रय लिया, उस मार्ग पर तू विचरण क्यों नहीं करता?

राम नाम रूपी मंत्र की महिमा शिवने जानी और उसने उसे अपने मन में स्थान दिया, उसी का उच्चारण करते रहना चाहिए। जिससे अंग पीड़ा बढ़े नहीं, अपितु दूर होजाय। जिसने रोग उत्पन्न किया, वही दवा देकर ठीक कर सकता है।

रचयिता—गोपालदास

—: गीत २६ :—

आणँद घण कुसन अहो निसि ओलगि,
आंखि कदे हिदा मझि ऊणि।
चित पंखी म करिसि काइ चिंता,
चांच दीध सुजि देस्यै चूणि ॥१॥

सुख दातार भुवण त्रिहुँ सामी,
ताइ भजि निसि चातुर जग तात।
तूं मन मत कलपै जियि तूना,
सुख दीन्हौ मख क्रितोहेक मात ॥२॥

जीव विचार करसो जोए,
जडहूँ चेतन कीयो जियि।
करिसि म सोच समथ हरि करिस्यैं,
पोखम कीध समरथ पिधि ॥३॥

प्रम जिणि कीध सोई ज किन प्रमखे,
प्राणीया उदर थकै प्रतिपाल।
गलो जेणि दीन्हो गोपाला,
गालो सुज देस्ये गोपाल ॥४॥

अर्थः—हे चित्त-पखेरू! कृष्ण का स्मरण कर, जिससे तुझे विशेष आनन्द प्राप्त होगा। तू हृदय में उदास मत हो और किसी प्रकार की चिन्ता न कर। जिसने चोंच दी वही चुगा (आहार) देगा।

हे मन! त्रिलोक पति सब सुखों का देने वाला और जगत्-पिता है। उसी का तू रात दिन जप करता रह और दुःखी मत हो। जिसने मुख दिया वही आहार भी देगा।

हे जीव! तू निश्चय सोचले कि हरि समर्थ है। उसी ने जड़ एवं चेतन को बनाया। तू चिन्ता मत कर, जिसने गर्भवास में पोषण कर जन्म दिया, वही उदर-पूर्ति भी करेगा।

माता की कुक्षि में जिसने पालना की, उस प्रभु का नाम लेता रह। गोपाल कवि कहता है:—जिसने मुख दिया वही खाने को भी देगा।

रचयिता—चतुर्भुज
—: गीत ३० :—

कीयो रूप नरसिंघ प्रहलाद हित कारणे,
गयँद उद्धारणे गुरुड़गामी।
पद्मावत कीर गणिका थई पार वा,
मंर्ता कज साम्रा नमो स्वामी ॥१॥

छांन छीपा तणी हाथ निज छवाई,
दीशाई गाय सो जगत जाणी।
जुलावे कवीरे घ्यान धरियो उदिन,
आप वालद भरे जिनस आंणी ॥२॥

जुध करे काज जम माल आरि गंजिया,
माहा वलु मांजिया खेत मांहे।
रिधू ग्रद छांडि भगित्र पण राखियो,
आप हरि हाथ आवध उठाहे ॥३॥

भील सवरी तणा बोर भूठा भखे,
खीचणै जाटणी तणो खायो।
नरसिया तणा काज सार्यां नरायण,
आप व्हे सांवला साह आयो ॥४॥

बीच लाखां गुहे पांडव उवारिया,
मारिया कोरवां तणां मांभी।
वधारे चीर ते लाज राखी वळे,
राज दे जुधिष्टर हुवो राजी ॥५॥

दास मीरां जिके जहर राणे दियो,
अम्रत कर जिम करलियो आेच आयो।
लियां पिंड रती नह ताव लागो तदन,
भरोसे जगतपत भरम भागो ॥६॥

तारियो अजामिल सजन ते तारियो,
गीध ऊधारीयो वेद गावे।
रहावण विरद गिरवर नखां धारियो,
पार नहँ सेस माहेस पावे ॥७॥

ऊधारे प्रभू पत साप ते अहेल्या,
तवे जग सरव अमरीख तारे।
सेन रे हेत नाई हुवो सांवरा,
सदा भगतां तणा काज सारे ॥८॥

बारहठ चत्रभुज करे यूं वीनती,
दीनती अधारे कांन दीजे।
सरब दुख मेट म्हारो अने साँवरा,
क्रपा कर आप रे थको कीजै ॥६॥

ऊधारे कीर काव्ढू कुटम आप रो,
लहे कुण आप रा गुणा लेखो।
रमापति राज रा विरद राखौ रिधू,
दसा मो दीन री ओर देखो ॥१०॥

अर्थः—हे प्रभो! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आपने प्रह्लाद क. रक्षा के लिए नृसिंहावतार धारण किया। इसी प्रकार हे गरुड़ गामी! आपने हाथी का उद्धार किया। गणिका ने तोते को आपका नाम मात्र पढ़ाया, जिससे वह भवसागर पार कर गई। इस प्रकार आप संतों के कार्य पूर्ण करते रहते हैं।

हे स्वामी ! यह संसार प्रसिद्ध है कि आपने अपने हाथों छींपे (एक जाति का व्यक्ति) की छत को छा दिया और गाय को बचा लिया। कबीर जुलाहे के ध्यान करने पर आप उसके यहाँ अनाज की बालद भरलाए।

हे हरि ! आपकी कृपा से मालदेव ने युद्ध करके युद्धस्थल में बलवान शत्रुओं को दबा कर नष्ट कर दिया। आपने भीष्म की प्रतिज्ञा को रख कर चक्र के स्थान पर रथ का पहिया उठाकर अपनी प्रतिज्ञा को तोड़(दिया अर्थात् भक्त की प्रतिज्ञा के लिए अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिया)।

हे नारायण ! आपने प्रेम के कारण सिवरी के झूठे बेर खाए, जाटनी का बनाया हुआ खीच (खीचड़ी) का भी आपने आहार किया और नरसी (महता) के कार्य को पूरा करने के लिए आप साँवल-शाह बनगए।

हे जगत्पति ! महाराणा ने मीरा को जहर दिया, उसने आपके विश्वास पर पी लिया। आप उस विष के अंश को पान कर गए और मीरा के लिए आपने उसे अमृत बना दिया। जिससे उसके शरीर को विषके ताप ने स्पर्श तक नहीं किया।

हे भगवान ! आपने अजामिल और सजना को पार लगा दिया, वेदों में उल्लेख है कि आप ही ने गिद्ध को मोक्ष दिया, अपने विरुद को निभाने (व्रज को बचाने के लिए) नख पर गिरि को उठा लिया। आपके इन चरित्रों का शेषनाग और महेश भी पार न पासके।

हे साँवरे प्रभो ! आपने अहिल्या को पति-श्राप से बचा लिया। संसार कहता है आपही ने अम्बरीष का उद्धार किया। सेना नाई के स्थान पर आप स्वयं नाई बने। इस प्रकार आपने सदा भक्तों के कार्य की पूर्ति की।

हे साँवरे ! मैं वारहठ चतुर्भुज आपसे विनती करता हूँ । मुझे दीन समझ कर आश्रय स्वरूप हो मेरी पुकार पर ध्यान लगाइये और मेरे सब दुःख दूर कर आप मुझे अपना सेवक बना लीजिए ।

हे लक्ष्मापति ! आपका स्मरण कर कीर (जाति विशेष) कालू अपने कुटुम्ब सहित मोक्ष को प्राप्त हुआ । अतः आपके गुणों का कौन पार पा सकता है । आप अपने विरुदों का पालन करते हुए मुझ दीन की दशा पर ध्यान दीजिए ।

रचयिता—चन्द्रलाल मादा[1]

—: गीत ३१ :—

दन दन प्रत देव आराधूं दनकर,
कीजे वेल हमें तवकाल ।
मो करणी भांके मत मालक,
भूप तणा विरद दस भाल ॥ १ ॥

अरुण-पती श्रवण तो अरजी,
पहुँचाविण श्रीदास 'पुरण' ।
जेज मती कीजे जुग जीवन,
हमें विपत तवकाल हरण ॥ २ ॥

देत वंस मोखण वरदायक,
अठ पहर चित ध्यान अखूं ।

१ यह कवि सरदारगढ़ से यांगे सांकरवा ग्राम में मादा शाखा के चारणों में हुए थे ।

करणा—धर कीजे श्री कारज,
बखम बकत फरियाद बक्रूं ॥ ३ ॥

जगतपती अंतरगत जाँमी,
मन चंता तमरार मटाय।
सेवग तणी अरज अब साँभल,
सूरज देव करो मम साय ॥ ४ ॥

हे दिनकर भगवान्! मैं प्रतिदिन आपकी आराधना करता हूँ। अब आप मेरी तत्क्षण सहायता करिए। हे स्वामी आप मेरी करणी को न देखें, आप तो अपने विरुदों को विचारें।

हे अरुण के स्वामी। आपके कानों तक मैं अपनी पुकार पहुँचा रहा हूँ, हे जग-जीवन! आप विलम्ब मत करना, मेरी आपत्ति को अब आप शीघ्र ही दूर कर दें।

हे दैत्य-वंश-नाशक विरुदवाले! मैं आपका आठों पहर ध्यान करता हूँ। हे किरणों के धारण कर्ता! मैं आपत्ति के समय विनय करता हूँ, आप मेरा यह कार्य सिद्ध कर देना।

हे जगतपति, अन्तर्यामी सूर्य भगवान्! आप मेरे मन से चिन्तारूपी अन्धेरे को मिटा देना और इस सेवक की विनय सुनकर शीघ्र ही सहायता करना।

रचयिता—जयमल बारहठ[1]

—: गीत ३२ :—

लङ्का लीजसी जल सागर लोपे,
हरि लग करतो हाँसा।
माल कूंभकरण रा भाई,
तंबूआँ तणा तमासा ॥१॥

लंका घेरि चहूँ दिसि लाया,
सारंगधर समियांणा।
ऊतारिस्ये कुणँनु ईसर,
रांणि प्रभणै राणा ॥२॥

कहै कलत्र सिव प्रांणि कांचवा,
करतो केसव केरा।
दुरमति छाँडि असुरपति देखे,
दसरथ सुत रा डेरा ॥३॥

मत्र ।खे म कहे त्रिय संके,
लङ्कापति किणि लेखे।
आँघर सो अडियाँ अहँकारी,
नव चौकियाँ न देखे ॥४॥

---

१ यह कवि बारहठ शाखा के चारणों में हुआ। इनका स्थान अज्ञात है। इनका होना वि० सं० १६०० के अन्तर्गत पाया जाता है, ये गीत १७१६ के संग्रह में से लिए गए हैं, जो साहित्य संस्थान में विद्यमान है।

अर्थः-मन्दोदरी रावण से कहती है। हे कुंभकर्ण के बन्धु ! तू हरि (रामचन्द्र) का परिहास करता था कि वह समुद्र को पार कर के कैसे लंका पर अधिकार करेगा उनके तंबू तान दिए गए हैं, उनका तमाशा देख।

मन्दोदरी कहने लगी कि हे रावण ! चारों ओर शामियाने (तम्बू) खड़े कर लंका को घेर लिया है। वह ईश्वर (रामचन्द्र) सब दानवों में से किसे किसे बाकी छोड़ेगा ?

मन्दोदरी कहने लगी "हे शिव-भक्त, दानवेश्वर" ! तू केशव (रामचन्द्र) पर ताना मारता था, अब भी दुर्बुद्धि को छोड़ दशरथ नन्दन के वितानों की ओर देख।

हे घमण्डी, लंकापति ! मुझ स्त्री के कहने पर संकुचित मत हो। (अपने विचार बदल दे।) तू प्रभु के समक्ष युद्ध नहीं। रामचन्द्र के गगनस्पर्शी एवं तोरणाकृति (तम्बुओं) की ओर देख (इन से जीतना असंभव है)।

—: गीत २३ :—

नरें वंनरें सरें लीधे गिरें लङ्करे,
आलिया दुयण दसरथी जाया।
बालिया वैर सीता सकट टालिवा,
ऊर्मि-दस-हाथ रघुनाथ आया ॥१॥
कहे मंदोदरी सहोदर-कुंभकन,
देखि दस सीस खग मांहि डोलै।

दीण होइ पगे पड़ि सीत पाछी दियाँ,
राण रूठो लखण ढांण रोले ॥२॥

हणू अंगद जिसा मीछ हलकारिया,
अजे देखे नहीं कांइ आंधा।
रूप होइ काल रै आवियो रामचन्द्र,
कोपियौ भांजिस्यै तूझ कांधा ॥३॥

सारि दस मीस गंधारि कूँभा सहित,
वाढि वंका भड़ाँ तेणि वेला।
थिर करे लंक गिरि त्रिभीखण थापते,
भला वे फाविया बोल मेला ॥४॥

अर्थः—मन्दोदरी कहने लगीः—हे बीस हाथ वाले रावण! चुने हुए नर-वानर वीरों को साथ लेकर लंका दुर्ग और शत्रुओं को भस्म करने एवं बदला लेने और सीता का कष्ट दूर करने के लिए दशरथ-पुत्र रामचन्द्र आगए हैं, (तुम सजग होजाओ)।

मन्दोदरी कहने लगीः— हे कुंभकर्ण के भाई, रावण! ये तेरे दसों मस्तक क्षण मात्र में लुढकते हुए दिखाई देंगे। अतः तुम दीनता दिखा एवं रामचन्द्र के पैरों पड़ कर सीता को लौटा दो, नहीं तो लक्ष्मण रुष्ट हो जायगा और झपटकर तुम्हारा नाश कर देगा।

हे लंकेश! हनुमान और अंगद जैसे वीरों को आगे बढ़ाया गया है। अब भी क्यों अंधे बने हुए हो, देखते नहीं रामचन्द्र यम-स्वरूप होकर आगया है और क्रुद्ध होने पर तुम्हारे कन्धे फाट देगा।

(इतना कहने पर भी, न मानने पर) रामचन्द्र ने अपने शस्त्रों द्वारा दशकंधर (रावण) और कुंभकर्ण को मार दिया एवं बाँके २ दानव योद्धाओं को उसी समय काट गिराया। लंका पर स्थिर रूप से विभीषण को स्थापित कर अपने दोनों वचनों विभीषण को लंकापति बनाना और रावण को नष्ट करने का पालन किया।

—: गीत ३४ :—

सगंद्र झलूझळ्ळै धर चळ्ळै सेस सिर सलसलै,
कपि दळ्ळै किलकिलै इम कहायो।
मेर गिर टलटळ्ळै माँण दँताँ मळ्ळै,
ऊठि दससीस जगदीस आयौ ॥१॥

घनख करगिहि घरे कोप पारँभ करे,
मछरे खरे लोपी मझाझा।
बानरे संघरे नरे वीरंवरे,
पाथरे मायरे वधि पाझा ॥२॥

हड़हड़े वीर रथ अड़े भड़ आहुड़े,
पड़े गढ़ कपि चड़े आप पाणा।
खग झड़े खड़खड़े काँगुरां खड़हड़े,
रामचन्द्र आविर्यो ऊठि राणा ॥३॥

पहटि पराठ खग झाट पाघोगिया,
ग्रहग गज-थाट अवियाट गाँजे।

दैत दहवाट करि विभीखण पाट दे,
मेलियौ त्रिकूट दससीस भाँजे ॥४॥

अर्थः—हे दशकन्धर (रावण) ! समुद्र तरंगित होगया, पृथ्वी चलायमान होगई, शेषनाग के मस्तक हिलने लग गए, वानर-सेना किलकारी मार कर सचेत कर रही है, सुमेरु पर्वत डगमगाने लगा है और दानवों की इज्जत धूल में मिलने वाली है; क्योंकि जगत्-पति(रामचन्द्र) चढ़ कर आगए हैं। अतः तू युद्ध के लिए सावधान हो जा।

रामचन्द्र मस्ती में आगए और कुपित होकर उन्होंने मर्यादा का उल्लंघन कर दिया तथा धनुष ग्रहण कर लिया। वानर वीरों का संहार कर रहे हैं और समुद्र मार्ग पर सेतु का निर्माण होगया है।

हे रावण ! वीर अट्टहास कर रहे हैं, रथ आपस में टकरा रहे हैं, योद्धा एक दूसरे से भिड़ रहे हैं, दुर्ग ढह पड़ा है, प्राणों के प्यासे कपि तेरे निकट आधमके हैं, तलवारों से आग झड़ रही है, दुर्ग के कंगूरे टकरा कर खड़ खड़ा रहे हैं। रामचन्द्र युद्ध के लिए आ पहुँचे हैं। अतः तू खड़ा होजा।

(इस प्रकार कपि सेना ने सावधान कर युद्ध छेड़ा) उस समय पंखधारी बाण सनसनाने लगे, खड्गाघात से रणस्थल पट गया, भालों द्वारा गज समूह नष्ट होगया और दानव नष्ट होगए। रामचन्द्र ने लंका को ध्वस्त कर दशकंधर रावण को मार दिया और विभीषण को लंका के राज्य सिंहासन पर बिठा दिया।

रचयिता—जसा आढ़ा[1]

—: गीत ३५ :—

अखर तोल रे उभै मत डोल रे आंग्टै,
पाप गंठ खोल रे समझ प्रांणी।
बाजतां ढोल रे कहूँ बीच बंसा,
बोल रे राम रामेत वाणी ॥१॥

रटी सब सेस प्रहलाद नारद रिखाँ,
धू रटी मटी जम त्रास धाखाँ।
जीवड़ा चटपटी राख रसणा जिका,
भाख झटपटी हर नाम भाखा ॥२॥

गज पढी पढी गनका पढी गोपियाँ,
मरतरी पढी गोरख सभाली।
अमी रस छाक जीहाँ न क्यूँ उचारै,
वाक हर-हरी हर-हरी वाली ॥३॥

सरण असरण उभै करण सेवागराँ,
धरणधर सरीखा चरण धावै।
जोन संघट हरण बरण विहुँवै "जसा"
गिरा तारण—तरण क्यूं न गावै ॥४॥

---

१ यह कवि आढ़ा शाखा के चारणों में मेवाड़ के आढ़ों के ग्राम सीनोदा व कच्छ-बाम और खेड़ा वाले आढ़ाओं के पूर्वज थे। इनके होने का समय वि० सं० १८०० के अन्त और १९०० के प्रारंभ में होना चाहिए।

अर्थः—हे प्राणी ! तू दोनों अक्षरों का मूल्यांकन कर (वह अमूल्य है)। इधर उधर मत जा और पाप की गाँठ खोल दे। मैं तुझे बीस ही बिश्वा डंके की चोट से सचेत करता हूँ कि तू राम नाम का उच्चारण करता रह।

जिस नाम को शिव, शेषनाग प्रह्लाद, नारद, ऋषिगण और ध्रुवने रटा और इसी कारण यम का भय उन्हें व्याप्त नहीं हुआ। अतः हे जीव ! लगन के साथ उसी हरिनाम को जिह्वा द्वारा शीघ्र रटता रह।

उसी नाम का गज, गणिका, गोपियों, भर्तृहरि और गोरख ने सजग होकर जाप किया। अतः अमृत की घूँट के तुल्य इस हरि-हर नाम का जिह्वा से बार २ स्मरण करता रह।

शरण मे आए हुए और नहीं आए हुए दोनों को वह अपना सेवक मानने वाला है। जिसके चरणों का ध्यान शेषावतार (लक्ष्मण) करते रहते हैं। "जसा" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि हिन्दू और यवन दोनों, दुःख-नाशक, तरण-तारण भगवान का नाम अपनी वाणी द्वारा क्यों नहीं लेते ?

रचयिता—जगावत[१]

—: गीत ३६ :—

माधा मात विण बाल बरसाल विणि मेदनी,
   जगा बैर—जीत विण भुइण जेहो।

१ यह कवि महिया रामा के वारों में हुआ था। इनका स्थान व समय अज्ञात है।

कंठ विण गेय वैंकुण्ठ विण सुर-कमल,
ताहरे ध्यांन विण ग्यांन तेहो ॥१॥

वास विण पहप अभियास विण वारता,
भुजा कालस विणा करण भाराथ।
सास विन देह वीसास विण संगाथी,
नांम विण जनम जांग जिसो जगनाथ ॥२॥

त्रिप विना ग्रेह जोवन विना तरुण पण,
जस विना वार विसतार जेहो।
निस विना चंद चंदन विना नाग गिर,
तो विना किसन संसार तेहो ॥३॥

नमो अवतार खालिक खलक नमीवण,
मुलक भांजे (हेक) पलक मांही।
जेतियो नाम जगदीस थारो जपे,
नाम विण राम गति हुओ नांही ॥४॥

अर्थः—हे माधव ! जिस प्रकार माता विना बालक वर्षा के विना पृथ्वी, सूर्य के प्रकाश के विना संसार, अच्छे स्वर के विना गान और नारायण के विना वैकुण्ठ, उसी प्रकार आपके विना ज्ञान वृथा है।

हे जगदीश्वर ! जिस प्रकार सुवास के विना पुष्प, अभ्यास के विना वार्ता-कथन, काल रूपी भुजाओं के विना युद्ध, स्वास के विना शरीर और विश्वास के विना मित्र, उसी प्रकार आपके नाम-स्मरण के विना जन्म वृथा है।

हे कृष्ण ! जिस प्रकार स्त्री के बिना घर, यौवन के उभार के बिना तरुणत्व, दान के संकल्पित जल के बिना यश, चन्द्रमा के बिना रात और सर्पों के बिना चन्दन, उसी प्रकार आपके बिना संसार की दशा है।

"जेता" कवि कहता है कि हे अलख प्रभो ! आपको नमस्कार है। संसार आपकी वन्दना करता है। आपके कोप करने पर पलमात्र में देश नष्ट होजाते हैं। अतः हे जगदीश्वर ! मैं आपका नाम जपता रहता हूँ; क्योंकि आप का स्मरण किए बिना मोक्ष प्राप्ति कठिन है।

रचयिता—धना

—: गीत ३७ :—

हरि हरि नित समरि ऊवरिसी हरि हूँ,
कांइरे जीहां हरि न कहै।
वाऊवा मरण सराणे वैरी,
वासै खुरे ओढ़तो वहै ॥१॥
निस दिन नाम जपै नारायण,
झाले साच पड़े म म झूठि।
दोखी अत आतम न देखै,
पांन्ही चढांहि जरा तौं पूठि ॥२॥

---

१. इस कवि का कहीं पर उल्लेख नहीं मिलता। संभवतः यह प्रसिद्ध धना भक्त हो। यह रचना वि० सं० १६०० के अन्तर्गत की है और ईसरदास बारहठ का समकालीन है।

प्राणियां नांम समिर पुरुषोतम,
अंनि विषय परहरे आल्।
पगसों पग ओड़तौ न पेखे,
क्रम क्रम जाल् नाखतो काल् ॥३॥
प्रिसण मरण हरि समथ पालिस्यै,
मेल्हे मा चित सुधमना !
धरि हरि चेत समरि धरणीधर,
धरणीधरि ऊबरिसि 'धना' ॥४॥

अर्थ:— हे पागल प्राणी ! तू हरि का स्मरण कर, उसे क्यों भुलाता है ? देखता नहीं अन्तक तेरे सिरहाने खड़ा है और पैर पर पैर देता हुआ पीछा कर रहा है।

हे आत्मा ! तू नारायण का जाप कर और सत्य को ग्रहण कर असत्य का परित्याग कर। देख, दुष्ट अन्तक ने जरा—अवस्था को तुझ पर सवार कर दिया है।

हे प्राणी ! पुरुषोत्तम का स्मरण कर और अन्य विषयों को वृथा समझ कर छोड़ दे। देखता नहीं कि काल फन्दा डालता और पग पर पग देता हुआ तेरे पीछे पड़ गया है।

"धना" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि पृथ्वी के धारण कर्त्ता प्रभु बड़े समर्थ हैं, वे मृत्यु रूपी शत्रु से तुझे बचालेंगे। अतः तू शुद्ध मन से उन्हें जपता रह; क्योंकि एक मात्र रक्षा करने वाले वही हैं।

रचयिता नन्दलाल मोतीसर[1]

—: गीत ३८ :—

जबर पराक्रम पार पावे कवण जोरको,
　　तोरको बडम फावे जगत तात।
　　　　घणो सुखदयण मेटण सँघट घोरको,
　　　　　　नदा कर याद गढचोर को नाथ ॥ १ ॥

मिढारण नसट–क्रम आज धारण विरद,
　　संत करवे भजन समट सारो।
　　　　मेटवो कसट प्रतपाल करवो मनां,
　　　　　　धणी चत्रभुज तणो असट धारो ॥ २ ॥

जस रटे सेस माहेस मुख जण–जणो,
　　कर धणी पणो अध दूर करणो।
　　　　धरा नवनद्र आनंद व (च) हे धणो,
　　　　　　सद्रढ गह सांवला तणो सरणो ॥ ३ ॥

अर्थः–"नन्द" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि जिसके पराक्रम की तुलना अन्य की शक्ति से नहीं की जा सकती। जो जगत्पिता है, उसके बड़प्पन के ढंग पर अन्य सुशोभित नहीं हो सकता जो महान् कष्ट को दूर कर विशेष सुख दाता है, ऐसे गढचौर के स्वामी (चतुर्भुज) का तू स्मरण करता रह।

---

१. यह कवि माम सम्भा निवासी मोतीसर जाति में हुआ था।

अर्थः— बुरे कर्मों का नाश करने वाला, विरुद्धारी, कष्टों को मिटाने वाला, संत इच्छापूर्वक जिसका भजन करते हैं और जो मन से पोषण करता रहता है, ऐसे चतुर्भुज धारी स्वामी का इष्ट रखना चाहिए।

शेष, महेश और प्रत्येक जिसका यशोगान करता रहता है, जो स्वामिपन का पालन कर पाप का नाश करता है एवं घर में नव निधि का दाता है, ऐसे सांवरे की तू दृढ़ शरण ग्रहण कर।

रचयिता—नृसिंहदास खड़िया

—: गीत ३६ :—

करियो अत कोप संतरे कारण,
मारण देंत बड़े मां–बाप।
अत आतुर प्रह्लाद उबारण,
अवनी भार उतारण आप ॥ १ ॥

फाड़े खंब कीध चहुँ फाड़ां,
खिणमें रुधिर चलावे खाल्।
हुए नरसिंघ हिरणाकुश हणियो,
वणियो रूप बडे विसराल् ॥ २ ॥

नखां चोल् रंग रसण चाल्वते,
पाड़े असुर चीरियो पेट।
करतां अरज जेज नंह कीधी,
हरी दीयो राल् हावल् हेट ॥ ३ ॥

क्रुद्ध होकर भी एक (रावण) को निर्भय पद और दूसरे (विभीषण) को लंकादुर्ग देदिया। इस प्रकार रामचन्द्र ने कृपा और कोप करके दोनों दानवों पर उपकार किया। ऐसा अन्य कौन कर सकता है ?

जिस नारायण (भगवान राम) ने कृपा करके (विभीषण) को लंका दी, उसे तो दूर रक्खा, परन्तु जिस (रावण) पर कोप किया उसे अपने निकट स्थान दिया। अतः रावण मोक्ष-प्राप्ति के कारण और विभीषण राज्य प्राप्ति के कारण, दोनों ही उनका अहसान मानते हैं।

—: गीत ४१ :—

अहिखी इन्द्राणी रुद्राणी,
वलि वलि वलि विहरी ब्रहमाणी।
वसुधा तणी वदंती वाणी,
रुकमणी माग सराहै राणी ॥ १ ॥
सत्रहणै किय कंस सरग्गी,
मूह भंजे ससीपाल उमग्गी।
सुत्री कहै सहूए म्हें सग्गी,
वडी स तूं हरी हत्थ विलग्गी ॥ २ ॥
सु वर रुकमणी तणे सुहावे,
पूजा फल इमड़ो जौ पावे।
भुयंगणि सत्री सावित्री भावे,
पूजण गवरी गवरि पछितावे ॥ ३ ॥

पती सुहाग रुकमणी पोर्से,
मरता आर रा तखे भरोसे ।
मणिधर इन्द्र रुद्र त्रिय मोसे,
दोसीयां विधि आखिर दोसे ॥ ४ ॥

अर्थः— नागपत्नियाँ, इन्द्राणी, रुद्राणी आकर बार २ बलैया लेती हैं । ब्रह्मा की पत्नी और संसार की सुन्दरियाँ परस्पर बातें करती हुई रुक्मिणी के भाग्य की प्रशंसा करने लगीं ।

वे सब कहने लगीः— "हे रुक्मिणी ! तुम्हारे पति ने अपने शत्रु कंस का संहार कर उसे स्वर्ग में पहुँचा दिया और उत्साह में आकर शिशुपाल के मस्तक को काट दिया । ऐसे हरि का तेरे साथ पाणिग्रहण हुआ है । यद्यपि स्त्री जाति में तुम हम एक हैं, फिर भी आप हम से बड़ी हैं ।"

हे रुक्मिणी ! तुम्हारा पति सुन्दर और सुहावना है । पूजा करने का फल मिले तो आप जैसा ही मिलना चाहिए । नागपत्नियाँ, सती सावित्री आदि के भी मन मुग्ध हो जाते हैं । अन्य स्त्रियाँ भी गौरी की पूजा करके पछताती हैं कि हमें ऐसा वर न मिला ।

हे देवी रुक्मिणी ! आप हमारे सौभाग्य की वृद्धि करती रहें । हमारे स्वामी आपके पति का शरण में आए हैं । यह कहती हुई नाग पत्नियाँ इन्द्राणी, रुद्राणी विधाता को उलाहना देती और उनके द्वारा अपने ललाट पर लिखे गए दूषित अक्षरों की निन्दा करने लगती हैं ।

—: गीत ४३ :—

हीरो कांइ कवडी साटै हारै,
कहि समझायौ आतम केतौ।
त्रिमौ किसो जिणि हरी वीसारे,
आउ किति जिणि कूदै ऐतौ ॥१॥

पड़े इन्द्र चऊ दह दिन पूरे,
वसे इन्द चौकड़ी वहतरि।
ब्रह्माइ गरढौ थियौ विम्रै,
हंस रे तसमात भजे हरि ॥२॥

मांडियो अंक अनादि भाल मधि,
पिथ तिको वहि आयौ पासे।
वार किति मिलती मरणावधि,
पैलांछे हत ज्यौंह पचासे ॥३॥

अर्थ:—हे आत्मा ! तुझे कई बार कह कर समझाया कि हीरा कहीं कौड़ी के बदले दिया जा सकता है? अत वह वैभव क्या कि जिसके कारण ईश्वर को भुला दिया जाय ! आयु क्षणिक है, उस पर उछल कूद करना वृथा है।

इन्द्र भी (मेघों) द्वारा कुछ ही दिन जल-वृष्टि करता है। चन्द्रमा भी रात्रि की बहत्तर चौघड़ियों तक ही उदय रहता है। ब्रह्मा भी अन्त में वृद्धत्व को प्राप्त हुआ। अतः हे प्राण पखेरू ! ईश्वर भजन करना ही उचित है।

ईश्वर ने भालस्थली पर लिख दिया है। इसीलिए तूने पृथ्वी पर आकर जन्म लिया। आयु की अन्तिम अवधि पचास वर्ष की है और अन्त में मृत्यु निश्चय है।

—: गीत ४४ :—

प्रहलाद पालि गज पालि परीखित,
पालि ग्वाल पंडवां पणि।
सरिखो को सामला न सूझै,
धणियापणर सेवगां धणी ॥१॥

जोड़ राजा बंधिया जरासंधि,
जोड़ अंबरीख द्रौपदी जोड़।
आयें सगठ आपरा उवेलण,
कृमन सरिखा धणी न कोड़ ॥२॥

दुखी मीत सुग्रीव ईसवर,
ईखि इन्द्र जादवकुल ईखि।
अरि हणि अंग चाढण ओलगुवां,
श्रीवर तणी न को सारीखि ॥३॥

गकम ग्राह बांध गिरि राजा,
कुल्या दूमासण दहकंध।
वालि अयूरत कंस विभाड़े,
पालि बंधण छोड़े जग बंध ॥४॥

आस जास पूरी हरि एतां,
आतम तास म छंडे आस।
भंजे सकट किते भूवणवरि,
दासां जानि कियौ प्रिथ दास ॥५॥

अर्थः—प्रह्लाद, गज, परीक्षित, ग्वाल और पाण्डवों ने जिसे पहचाना और सूचित भी किया कि साँवरे के समान सेवकों पर कृपा करने वाला अन्य कौन हो सकता है ?

जरासन्ध द्वारा बाँधे गए राजा, अम्बरीष और द्रौपदी ने उनके स्वरूप को देखा। उन्हीं द्वारा ज्ञात हुआ कि आपत्ति के समय सहायता करने वाला कृष्ण जैसा स्वामी अन्य कोई भी नहीं है।

सीता, सुग्रीव, शिव, इन्द्र और यादव-वंशजों ने स्पष्ट रूप से यह बतलाया कि शत्रुओं को मारकर स्मरण करने वालों को कान्तिमान बनाने वाले लक्ष्मीपति के तुल्य अन्य किसको कहा जाय ?

असुर प्रकृति वाले राक्षस, ग्राह, बाणासुर, शिखी (मयूर ध्वज) कृत्या, दुःशासन, रावण, बाली और कंस का, जिसने नाश किया तथा जो बली को बंधन में लेने वाला है, वही सांसारिक बंधन से भक्तों को छुड़ाने वाला है।

"पृथ्वीराज" कहता है कि जिस हरि ने उपरोक्त भक्तों की आशा पूर्ण की, अतः हे आत्मा ! उसकी आशा का परित्याग न कर। पृथ्वी पर उसने कितनों ही के दुःख दूर किए हैं और सेवकों की पंक्ति में मान कर मुझे भी अपना दास बना लिया है।

—: गीत ४५ :—

पंथिया रैं हेक प्रीति सदेसौं,
कहिजो जाइ आगली केसौं।
नंद जसोदा नेम अनेसो,
अम्हा वियां पैं एह अँदेसो ॥१॥

एक सु दिन जैं गोकलि आयौ,
धाइ जसोदा अंचल धायौं।
गोलणी मिलि मंगल गायौं,
बीठलैं जाइ समंद्र वसायौं ॥२॥

वीसारी हरी करे विड़ाणी,
वाणी एह यदं विललांणी।
रिधि द्वारिका मंडि रजधाणी,
रहिया रीझि रुकमणी राणी ॥३॥

नयणे आँवू उर नेसासा,
अवला विहवल थई उदासा।
उरि अगिलूणी वंधे आसा,
प्रीथ न छंडैं जमना पासा ॥४॥

अर्थः—गोपिएँ कहती हैं कि हे पथिक ! तू केशव के समक्ष हमारा सन्देश कहना कि नन्द और यशोदा भी सशंक हैं ! हम भी विस्मित हैं !

एक दिन तो वह था कि गोकुल में आकर वह यशोदा का पय-पान कर बड़ा हुआ। ग्वालों ने भी उसका मंगल गान किया। अब वही विठ्ठल भगवान् ने समुद्र तट पर जाकर द्वारिका की स्थापना की।

बिलखती हुई वे कहने लगीं कि हरि ने हम को पराया मान कर भुला दिया है। अपनी राजधानी द्वारिका बना कर वहाँ सिद्धि का निवास कर दिया और रानी रुक्मिणी पर रीझ गए।

उन गोपिकाओं के नेत्रों से अश्रु और हृदय से ऊर्ध्व श्वास चल पड़ा और वे विकृत होकर उदास होगई। पृथ्वीराज कहता है कि वे (गोपियाँ) जन्म पाश को सत्य मानती हुई फिर कभी मिलन की आशा में निमग्न होगई।

— गीत ४६ :—

हर हलावै जेम तेम हालीजै,
की धणियाँ सूँ जोर कृपाल।
मौली दाधी दीर्धा छत्र माथै,
हूँ दोनूँ ले हालस्यूँ दयाल ॥१॥
गलिपापन मावै गीसाणो,
गज चाढ़े खर चाढ गुलांम।
मोहरा देव तांहरी महिमा,
रजा सजा सिर ऊपर रांम ॥२॥
आखे हम तुम याही इसवर,
सींधुर पाखै केम सरै।
चीतारो खर ऊपर चित्रवे,
किसूं पूतली पाँण करै ॥३॥

तूं सांमी प्रथीराज तांहरो,
लोकां बीजां लाग अलाग।
रूठो जिको प्रताप गवलों,
भूंडो जिको अमीणो भाग ॥४॥

अर्थ:— हे कृपालु हरि ! आप जिस मार्ग पर चलाएंगे, उसी पर चलना पड़ेगा। आपके समक्ष दास क्या कर सकता है ? आप सिर पर लकड़ियों का गट्ठर दें, चाहे छत्र धारण करावें। मुझ पर आप जो बोझा लादेंगे, उसे ढोना ही पड़ेगा।

हे भगवान् राम ! आप प्रसन्न होकर हाथी पर तथा रुष्ट होकर चाहे गधे पर चढ़ाइये, मैं तो आपका सेवक हूँ। हे देव ! आपकी बड़ी महिमा है। आपकी कृपा हो, चाहे अप्रसन्नता, दोनों मुझे मस्तक पर चढ़ानी ही पड़ेंगी।

हे ईश्वर ! मैं आपसे यह निवेदन करता हूँ कि यदि आपसे हाथी की सवारी ही माँगी जाय तो कैसे बन पड़ता ? क्योंकि चित्रकार के हाथ में कलम है। यदि वह चित्र में खींची जाने वाली पुतली को गधे पर अंकित करदे, तो पुतली क्या जोर कर सकती है ?

हे प्रभो ! आप मेरे स्वामी और मैं आपका सेवक पृथ्वीराज हूँ। अन्य लोगों से तो अस्थायी संबन्ध है (सच्चा संबन्ध आपसे है)। अतः अपने अच्छे दिनों को आपकी कृपा और बुरे दिनों को अपने दुर्भाग्य का कारण मानता हूँ।

—: गीत ४७ :—

तणा द्रोपती देसतां जगत अरि तांणता,
मला कर रूठण हरि जगत मणिया।

पूरचे जगत हूँ, चीर-हथिणापुरे,
साद हथिणापुरा जगति सुखियां ॥१॥
थल करण हेकने हेक कूसम थली,
आच श्रुति प्रवाड़ा अरकि ऊगा।
करण करणा करे कुसन कुसना तणा,
पुर विन्हे सद वसत्र समां पूगा ॥२॥
वार पंचालि विचि द्वारिकां पजावे,
विसव—ओथण जोए जोड़ वादे।
अनँत आचागलौ दास ऊवेलिवा,
श्रवणि सरुवो अनँत दास सादे ॥३॥
जस गुण प्रम नक्यो द्रौपदी सद तणो,
पगुरण तणो गुण नक्यो "प्रिथदास"।
इलन आकास गुण दूरि पूगा जअन,
राउलो सुगुण रुखमणी–रमण–रास ॥४॥

अर्थ—हे हरि! सब के देखते जब द्रौपदी का शत्रु (दुःशासन) उस का चीर खींच रहा था, तब आपने उसकी सहायता की, जिससे आपके हाथ विश्व की भलाई करने वाले कहे गए। द्रौपदी द्वारा हस्तिनापुर से पुकार की गई, उसी समय वहाँ चीर बढ़ने लग गया।

हे कृष्ण! एक (पांडवों) को स्थापित और दूसरे (कौरवों) को गिराने वाले आपके हाथों की ख्याति प्रत्येक के कानों में पहुँची। हे करुणाकर! आपकी जय हो! जब आप द्रौपदी की सहायता के लिए तत्पर हुए, तब मानो अनेकों सूर्य उदित हुए हों, इस प्रकार आपका

तेज प्रसारित हुआ। इधर आपके पास द्रौपदी की पुकार पहुँची, उधर द्रौपदी के पास अनेकों चीर पहुँच गए।

पंचाली (द्रौपदी) की पुकार द्वारिका में पहुँची। हे विश्व-द्रष्टा! आप उससे पूर्व ही अवगत हो गए। हे अनंत प्रभो! आप भक्त की रक्षा के लिए सदा आतुर रहते हैं और पुकार सुनने में आपकी श्रवण शक्ति अपार है यह (बात) सदा से भक्त कहते आए हैं।

हे रुक्मिणी रमण! यह आपका दास पृथ्वीराज कहता है कि द्रौपदी की पुकार पर उसके गुण क्षण में ही कानों द्वारा आपके हृदय में प्रवेश कर गए तथा आप अपनी प्यारी पद्मिनी (तुल्य रुक्मिणी) के गुण (द्रौपदी की रक्षा की स्मृति में) भूल गए। उसी समय आपके गुणों की प्रशंसा पृथ्वी और आकाश में साथ २ फैल गई।

—: गीत ४८ :—

असमान कुळेह गत माळा उडीयण, रार बिन्हे सूरज राकस,
यल मेखली वणायां एहो, अनँत मेहर तोनु आदेश ॥१॥
भुज-गिर सिखर रोमराय अदभुत, तोय फिरवा सायर त्रिण च्यार,
विष काळा वलता मुखवाळा, जूना नाथ अनत जुहार ॥२॥
वीऊ चित वात साच जैं वाचा, असी च्यार लख आतम आथ।
गात लात सां सहणा गूढां, निमसकार हरि बूढा नाथ ॥३॥
नाह छत्रीस राग वाजैं नित, अकवीस में गुरुड़ आरोड,
सोळे से जोगणी सहेतो, जोगी घरवारी हरि जोड ॥४॥
लख घट मांजे घड़े सवा लख, कलियाँ जासें नहीं किणी,
इण अचसता तणा तो ईसर, धोक धोक त्रहूँ लोक धणी ॥५॥

अर्थः—हे अनन्त कृपालु ! तुझे नमस्कार है। तेरी टोपी के रूप में तारे एवं अविरोध सूर्य चन्द्र हैं तथा पृथ्वी ही तेरी कर्धनी है।

हे श्याम वर्ण पुरातन पुरुष ! मैं तेरी वन्दना करता हूँ। गिरि-शिखर ही तेरी भुजाएँ हैं, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले (वृक्ष) ही तेरी रोमावली है, सप्त सिन्धु और अग्नि ही तेरा मुख है।

हे पुराण पुरुष हरि ! तू अनुचित को भी उचित कर बताने वाला, चौरासी लाख प्राणियों में वास करने वाला और भृगु का पद-प्रहार सहन करने वाला है।

हे गृहस्थ योगी ! छत्तीस ही राग रागिनियों के रूप में तू प्रतिध्वनित होता है। (भक्त पर) आपत्ति आने पर तू गरुड़ पर आरूढ़ होने वाला है और सोलह सौ योगिनी स्वरूपा प्रियतमाओं का स्वामी है।

हे त्रिलोक पति ! तेरी बार २ वन्दना करता हूँ। तू लाखों का नाश कर्ता और सवा लाख का निर्माता है। तू ऐसा है कि तेरा कोई भी वर्णन नहीं कर सकता।

रचयिता—परमानन्द बीठ[1]

—: गीत ४६ :—

अंग दिये लाख अँगि अँगि लख उतमँग,
उतमँग मुख द्यै लाख अनंत।
मुखि मुखि. रसणि दिये लख माद्दव,
मुणि तौं सकां न सुगुण महंत ॥१॥

---

१ यह कवि चारण जाति की बीठू शाखा का था। विशेषतः इस शाखा के चारणों का निवास स्थान बीकानेर राज्य में पाया जाता है। इस कवि का

सु तण कोटि तिणि तिणि कोटि शिर,
सिरी सिरी कोटि वदन समराथ।
वदनि वदनि वे कोटि जीह वलि,
जपि ता गुण न सकां जगनाथ ॥२॥

घड़ ध्र, कोटि कोटि घड़ि घड़ि ध्र,
कोटि ध्रवां ध्र जिगन करे।
जिगनि जिगनि वै कोटि तवन जो,
त्रिम तो सुगुण न पार करे ॥३॥

वप ध्र वदन जीह विनवाणे,
पारब्रह्म कुण लाभै पार।
करमाणदो छोडवो केशव,
क्रमबंधण हूँता करतार ॥४॥

अर्थः—हे माधव! यदि लाखों अङ्ग, एक २ अङ्ग पर लाखों मस्तक, एक २ मस्तक के लाखों मुख, एक २ मुख में लाखों जिह्वा दे, तो भी तेरे महान् गुणों का वर्णन नहीं कर सकते।

हे जगदीश्वर! एक शरीर के स्थान पर करोड़ शरीर, एक २ शरीर पर करोड़ मस्तक, एक २ मस्तक पर करोड़ मुख और एक २ मुख में करोड़ जिह्वा दे, तो भी तेरे गुण-कथन नहीं किए जा सकते।

काल स्थान अज्ञात है। पर यह प्राचीन है; क्योंकि इसकी रचना १७११ के संग्रह में मिली है, जो साहित्य संस्थान में विद्यमान है। भावः इसकी कविता ईश्वर सम्बन्धी तथा उपदेशात्मक है।

हे परमेश्वर ! एक शरीर के स्थान पर करोड़ शरीर, एक २ शरीर पर करोड़ मस्तक दे और उसके द्वारा करोड़ यज्ञ किए जायँ, एक २ यज्ञ में करोड़ों जप किए जायँ, फिर भी तेरे गुण का पार नहीं पा सकते।

हे परब्रह्म ! शरीर, मुख, मस्तक और जिह्वाएँ उपरोक्त रूप में होने पर भी तेरा कोई पार नहीं पा सकता। हे स्रष्टा केशव ! तू मुझ कर्मानन्द को कर्मों के बन्धन से मुक्त कर दे।

रचयिता—परशराम वैष्णव

—: गीत ४० :—

करू' भामणां जेण नरसिंघ थारी कला,
आद लग पजोवण संत आडा।
गाजते गाज असमान गु'जाड़ियो,
फाड़ियो खंभ चौफाड़ फाड़ा ॥१॥

पेज पहलाद धण नाद ची पालते,
असुर दिस भालते बोल आँटा।
जागियो गयण गु'जार आथर जुत्रो,
विहर पाथर हुवो च्यार वाँटा ॥२॥

मात्रियो भगत चो दैत अण मात्रियो,
थात्रियो चखां धिकती अगाराँ।
गड़बड़े गयण पनरे छहूँ गड़ड़ियो,
वड़ड़ियो खमन हुँप चहूँ वाराँ ॥३॥

सात दध झलझले सलसले सेस सिर,
चलचले जई प्रथमी चढी चाक।
हिरण कुस हाथले खले ऊभो हरी,
नले प्रसले कियां चाढियाँ नाक ॥४॥

अर्थः—हे नृसिंह! आपके चरित्रों से विश्वास होता है कि आप आदि से ही संतों के रक्षक हैं। आपने गर्जना करके आकाश को प्रतिध्वनित कर स्तंभ को विदीर्ण कर दिया।

हे ऊर्ध्व घोष करने वाले! आपने दानव के अंटशंट बोलने पर प्रह्लाद की प्रतिज्ञा का पालन किया। जिस समय आपकी गर्जना से आकाश गूँजा, उसी समय पत्थर से निर्मित दृढ़ स्तंभ फटगया।

हे नृसिंह! जिस समय आप आँखों से अङ्गारे बरसाते हुए सामने आए, उस समय आपका यह स्वरूप भक्त (प्रह्लाद) को सुहावना तथा दानव (प्रह्लाद के पिता) को भयानक लगा। (आपकी गर्जना) से आकाश डगमगा गया और इक्कीस संख्या वाला स्वर्ग भी गूँज उठा तथा स्तंभ चार भागों में फट गया।

हे हरि! आपके आतंक से सातों समुद्र छलकने लग गए। शेष नाग के मस्तक हिलने लगे, जब आपने अपने कराघात से हिरण्यकशिपु को मारा और आप त्योरी चढ़ा, नासिका को फुला कर खड़े हुए तब पृथ्वी चलायमान होकर चक्कर काटने लग गई।

—: गीत ४१ :—

निमो गरीस रा अंस येसादमसा समीर नंद,
कपीस रा मित्र कोस छवीस रा काल।

राखसेस (जूटे) जिठै केसरी कीस रा हणू,
त्रिलोकीईस रा वाजै तो भुजां अंबाल ॥१॥

सुग्रीव पाथ रा सुहि पाथ रा परम सखा,
थिरू दै आथ रा राम गाथ रा थानक।
बिढै बीस हाथ रा लंकेस जठै महावीर,
अजोध्या नाथ रा धुरै तो भुजां आनंक ॥२॥

पल्वंगी प्रचंड पांख चांपणो पहाड़ पगां,
उटंगी भांपणां सिंधु मंगे आसमांन।
अड़े आसु रेस जठै तूझ दोहणो अभंगी,
सीता नाथ नणा जंगी सबदे सादान ॥३॥

मीम लटै सेस न जाय मार भोम सपो,
कटै धू लंकेस रा महेस रा कामंक।
आंत्रा तूझ ऊपरा दिनेस रा ग्रसेस ऊठै,
टहक्के जीत रा गपवेस रा टामक ॥४॥

क्रोध झाला कराला करां स किरमाला कढै,
जठै गण जरदाला अताला जुडन्त।
बापनद बीजेकारी तूझ पंणा जती बाला,
राजा रामचंद्र वाला अंबाला रूडन्त ॥५॥

अर्थः—कैलाश पर्वत के स्वामी, एकादश रुद्र के अंशधारी, हे पवन पुत्र! आप सुग्रीव के मित्र और छायामात्र सीता का हरण

करने वाले (रावण) के काल स्वरूप हैं। हे केशरी कुमार हनुमान! जिस समय दानवेश सामना करने को बढ़ता है, तब आपके ही बलपर त्रिलोक पति (रामचन्द्र के) रणवाद्य बजने लगते हैं।

हे महावीर! आप सुग्रीव के पथ का अनुसरण करने वाले और पथिक (रामचन्द्र) के परम सखा हैं। जिस समय बीस भुजाओं वाला लङ्कापति युद्ध के लिए भिड़ता है, तब आपके ही (भुज) बल पर अयोध्या पति के नक्कारे बजते हैं।

हे प्रचण्ड काय बली वानर! आपने पग से पर्वत को दबाकर ऊँची उड़ान ली और आकाश मार्ग से विचरण कर आप समुद्र को लाँघ गए। जब असुर पति (रावण) जुट पड़ा, तब आप उसके विद्रोही बन गए। आप जैसे अभङ्ग वीर के कारण ही सीतापति के नक्कारे बड़े जोरों से बज उठे।

हे सूर्य को ग्रस जाने वाले! जिस समय पृथ्वी का भार वहन कर शेषनाग के मस्तक नमने लगते हैं और महेश द्वारा वर पाए हुए लंकेश के मस्तक कटने लगते हैं, उस समय तेरे हाथ ऊपर उठे हुए देख कर राघवेश (रामचन्द्र) के विजयवाद्य बजने लगते हैं।

हे विजयी, पवन-पुत्र, बाल यति! जिस समय रावण के कवच-धारी वीर क्रोधाग्नि की ज्वाला फैलाते और तलवार हाथ में लिए द्रुत गति से जुट पड़ते हैं। उस समय तेरे ही बल पर भगवान् रामचन्द्र के रणवाद्य जोरों से बजने लगते हैं।

रचयिता—बुद्धा संढायच[1]

—: गीत ५२ :—

पड़ी भीड़ जल डुबतां घरी पल,
री करुणां ग्रहण ग्राह रीधी।
अही अरी तजे आयो वडी आतुरी,
करी री स्याहि जद हरी कीधी ॥१॥

हरण कस्यप दनुज कोपियो पुत्र हरण,
फाड़ पाहण असह पाड़ फीको।
राखियो बाल प्रहलाद तारण तरण,
नरहरी चरण री सरण नीको ॥२॥

चीर पाचूं वचन हारतां सभा बिच,
हुई तकरीर पांडव हटायो।
द्रोपदी चीर ग्रह खेंचता दुसासण,
अरज सुणतां समो भीर आयो ॥३॥

भरोसो गाव दिल तेण भगवंतरो,
जबर बलवंत खल जेण जीता।
बीमल जस गाय गुण ग्रंथ निम दिन 'बुधा',
संत जन सिहायक कंथ सीता ॥४॥

---

१ यह संढायच शाखा का चारण कवि था। इसकी रचना १८०० के अन्त और १९०० वि० सं० के आरंभ की मिलती है। इसका स्थानादि अज्ञात है।

अर्थ—ग्राह द्वारा ग्रसा हुआ हाथी जब जल में डूबने लगा, तब उसने करुण पुकार की, उसे सुन कर हरि ने गरुड़ को छोड़ दिया और पहले ही दौड़ कर उसकी रक्षा की।

दानव हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र का नाश चाहा, उस समय तरण-तारण नृसिंह ने पत्थर निर्मित स्तंभ को विदीर्ण कर उस दानव को तेज हीन कर दिया और प्रल्हाद को बचा लिया। अतः ईश्वर के चरणों की शरण उत्तम है।

पाँचों पाण्डव, सभा में दाव हार गए और वाद विवाद होने पर कान्ति हीन होगए। जब दुःशासन ने द्रौपदी का चीर पकड़ कर खींचा, उस समय उसकी पुकार सुनते ही प्रभु सहायता के लिए शीघ्र आ उपस्थित हुए।

"बुद्ध" कवि अपने को संबोधित कर कहता है तू उस भगवान् पर दृढ विश्वास रख, जो बड़े २ बलवाले दुष्टों को जीतने वाला है। संतों का सहायक एक मात्र सियापति है। अतः तू उसी के निर्मल यश-गान और गुणों को ग्रन्थ रूप देकर पढ़ता रह।

—: गीत ४३ :—

धरियो पण जनक यसो मन धारे,
धनक पनाक चढाय भरे।
महपत आय स्वयंबर माँहे,
वसुधा कँवरी जिको वरे ॥१॥
तात हूँत थयकी प्रतज्ञीया,
माँमल मात कहूँ मरसाल।

का ध्वस्त कर उस पर अधिकार करने वाले प्रभु महान् से भी महान् हैं !

जिसने जल में डूबते हुए हाथी को आपत्ति में पड़ा देख उसकी रक्षा की और तन्तु में फँसाने वाले माह से भिड़ने को "राम" कहते ही वह चतुर्भुजधारी चक्रपाणि गरुड़ को छोड़कर पैदल ही दौड़ पड़ा। ऐसा एक मात्र हरि ही है।

जिसने वंसी बजा कर वृन्दावन में रास रचाई और त्रिभुवन की स्त्रियों के मन मोहित हो गए। ऐसा कृष्ण, जो अनन्यात्मा है, वह न तो बालक, न युवा, न वृद्ध ही कहा जाता है। उसका रहन सहन दोष रहित है।

अपने सहस्र फणों से रहते हुए भी शेषनाग जिसका पार नहीं पा सकता। देवता एवं इन्द्रादि भी उसकी सम्पूर्ण स्तुति करने में अशक्त हैं। शिव, ब्रह्मा और मुनिगण जिसके गुण गान करते रहते हैं। ऐसे भगवान् रामचन्द्र हैं (उनका बार २ स्मरण करते रहना चाहिए)।

—: गीत ४४ :—

वणियो गढवीर वैकूंठ बरोबर,
रात दवस अहूँ लोक रटै।
लंका भांजण हार लछंमण,
ऊभो धानक धार उठै ॥१॥
दन वालियो टलियो दुख दालद्र,
ऊजलियो तालो अणपार।

म्हांने सद दाता हद मिलियो,
सांवलियो रूड़ो सरदार ॥२॥
आछोजी रघुकुल उजवाला,
विरदाला मह माहावल।
भंजण दस कंध च्यार भुजाला,
काला घन अदभूत कला ॥३॥
जांझ अदंग झालरां जणहण,
गणहण नोपत नाद घुरे।
भेंरी संख भूंगलां भणहण,
के किवजण जे सबद करे ॥४॥
धानक कर भू तार धारणा,
वदन छवी अथ भूत वणी।
सेस रूप अवतार सांवरो,
धूत वडो गढवोर धणी ॥५॥

अर्थः—रातदिन तीनों लोक के निवासी गढ़वौर स्थान को वैकुण्ठ तुल्य मानते हैं। क्योंकि यहाँ पर लंका को नष्ट करने वाले लक्षमण धनुष धारण किए हुए दृष्टि गोचर होते हैं।

हमारे अच्छे दिन है कि साँवरे जैसे स्वामी के मिलने से हमारी दरिद्रता दूर होगई और भाग्योदय होगया।

यह रघुकुल को उज्ज्वल करने वाला, विरदधारी महान् वीर, दशकंधर का नाशक, चार भुजा धारी श्याम स्वरूप है, इसको धन्य है। इसकी अद्भुत कला है!

इनके द्वार पर चाँग मृदंग, झालरे, नोवत, भेरी, शंख और भुङल (एक प्रकार का बिगुल) आदि बजते रहते हैं।

पृथ्वी के उद्धार के लिए धनुप हाथ में लिए ये अद्भुत शोभा पाते हैं। यह शेषावतार श्याम गढ़बोर का स्वामी बड़ा सजग वीर है।

—: गीत ४६ :—

जटा ऊपरे विराजे गंगा सनंगा सरूप जोगी,
भांग का अरोगी भोगी भुजालो भूपाल।
गले कंठ रूद(मुण्ड)माला केकी काला नाग गाजे,
विराजे सदाई विलौह रूप मै विसाल ॥१॥

भलक्के कपाला चंद्र ज्वाला झाला नेत्र भजे,
चढै फूल आकवाला वडाला आचार।
नेजाला गजाला नेक पजाला सोपाण नोंधे,
पारवती वाला नाथ नमां नो अपार ॥२॥

बाघबर जला धर मधार विराजे वदां,
नाथ ग्रूर हरा हरं अमरं त नाम।
दसै सरं वरं दाता नील कंठ नेक नामी,
समरां प्रथम सदा पारवती सांम ॥३॥

मोज रा वराम ईम पमारा कुरंग मेटो,
नवा खंडां नमां ताइ पारवती नाथ।
अमरो तुहारी मारी अवतारी मुने एक,
हेमरा हजारी दीजे मधा रीजै हाथ ॥४॥

अर्थः—हे सुन्दर स्वरूपधारी योगी ! आपकी जटा पर गंगा सुशोभित है। आप भाँग पीने वाले हैं। आपकी भुजाओं पर सर्प लिपटे हुए हैं। गरल और मुण्डमाला से आपका कंठ सुशोभित है।

आपके ललाट पर चन्द्रमा चमचमा रहा है और साथ ही त्रिनेत्र से अग्नि ज्वाला फैल रही है। आप पर आक के पुष्प चढ़ाए जाते हैं। आप बड़े उदार हैं। आपकी सीढ़ियों पर नेजा धारी, गजारोही और ध्वजाधारी बार २ मस्तक नमाते हुए देखे गए हैं।

हे पार्वती के स्वामी नीलकंठ ! आप बाघंबर धारण करने वाले हैं। आपके मस्तक पर जल प्रवाहित होता रहता है। आप वीर पुरुषों के, हरा के और देवताओं के स्वामी हैं। देशाधिपों को आप वर देने-वाले हैं। अतः मैं सबसे पहले आपका स्मरण करता हूँ।

हे पार्वती पति शिव ! आप सुखदाता हैं। अतः यदि पामरों द्वारा उत्पात होता हो, उसे दूर कर दें। आपको नव खण्ड नमस्कार करते हैं। मुझे एक मात्र आपका ही आश्रय है। अतः मेरे कार्य साधन के लिए सहस्र २ मूल्य के घोड़े प्रदान कर (युद्धादि) में सदा मेरा साथ देते रहें—यही मेरी विनती है।

—: गीत ४५ :—

पूछो सब वेद कना कोई पंडत,
नरमल होसी को दन वार।
सुणा (सूं) सुणो हे साहब,
कपटी सूं कपटी करतार॥१॥

चुत्रभुज भजो न्याय मत चालो,
पग दे मू तर उपाड़ो पाव।
नांके रात दवस धण नामी,
डाव करे जण ऊपर डाव ॥२॥

जग भोला नरवे मत जाणो,
सांची एक भजन री संद।
पटके अण चीत्यां परसोतम,
फँद गूंथे जणरे सरफंद ॥३॥

भरम री पास तोड़ हर भज जे,
तज जे कूड़ कपट री तांन।
जो (क) दा चत मोलाइज जाणो,
(तो) मोलां रे मीड़ू भगवान ॥४॥

अर्थः—हे मानव शरीर ! तू अपने मन को पवित्र कब करेगा ? सोचले, शिव, वेद और पंडितों का कथन है कि स्रष्टा साचे के साथ सीधा और कपटी के साथ कपटी है।

चतुर्भुज विष्णु का स्मरण कर न्याय के मार्ग पर विचरण करो और सँभल कर कदम उठाओ। क्योंकि दाव देनेवाले पर ईश्वर रात-दिन दाव लगाता रहता है।

हे भोले मानव ! अपने आपको खतरे से बचा हुआ मत समझ। सब से सच्चा संबन्ध ईश्वर भजन का ही है। वह पुरुषोत्तम जाल करनेवाले को जाल में डाल देता है।

अतः भ्रम का फंदा तोड़ कर ईश्वर भजन कर और झूठ तथा कपट का त्याग कर। यदि तुम ईश्वर को भोला मानते हो, तो ठीक है, वह भोलों का ही साथी है।

—: गीत ५८ :—

करम जिके प्रारब्ध क्रीयमाण सञ्चत किता,
जिता किय छता हुय आप जोळे।
लाद्ध मरयार जे लोभ ममता लियां,
रता दुख नता कर मूक रोळे ॥१॥

भुलावे भोग जनमे जनम भ्रमावे,
रमावे कांतकी माय रुल सूं।
जिके हर रटे निज घात रो जमावे,
समावे नांही पद आद मुख सूं ॥२॥

कदे स्वेद जरा इंड थद्भूज कदे,
पिड नाना तरह भेख पाखे।
कसट मेटन परम करूं विनती किसी,
रसी गुण ग्रहूँ ग्रह घसी राखे ॥३॥

जीव अंस राजा रो कहे मारो जगत,
दिये सारो अगम निगम डाला।
मारजे गरज सुण अरज अरज असरण मरण,
"बुधा" री करण प्रतपाल वाला ॥४॥

अर्थः—हे पद्मीपति ! जितने भी कर्म संचित किए हैं, वे सब आपकी गोदी का सहारा लेकर किए हैं। वे आपके ध्यान में हैं। लोभ और मोह से लिप्त होने के कारण वे मेरे लिए खतरनाक एवं नाशकारी हैं।

हे हरि ! मुझे विषय वासना भूल में डाल जन्म २ में भ्रमाती रहती है। कौतुकी बनकर इसने एक प्रकार से खेल रच रक्खा है और मुझे अपना दाव दिए हुए है। इसीलिए सुखपूर्वक परमपद की प्राप्ति नहीं होती।

हे दुःख नाशक प्रभो ! मैं स्वेदज, अण्डज और पिण्डज रूप में विविध शरीर धारण करता रहता हूँ। रसिकता के कारण मुझे काम, क्रोध और मोह गृहस्थ से दूर नहीं पड़ने देते। मैं आप से क्या विनती करूँ (आप सब जानने वाले हैं)।

निगमागम साक्षी है और संसार भी कहता है कि जीव ईश्वर का अंश है। अतः मैं "बुद्ध" विनती करता हूँ कि हे अशरण को शरण देनेवाले ! मेरी इच्छा पूर्ति कर पोषण करते रहना।

—: गीत ४६ :—

कही वेद ग्रन्थां कितां वात सो सही कर,
गही ज्यां लही विश्व सत गावे।
ध्यान धरणी धरण करे चित धीर सूं,
परम गत जिके नर अवस पावे ॥१॥

उडतो चीत दस दिसं ग्रहे- आणियाँ,
थिर कर भँवर गुञ्जार थल में।

रहे आठ पहर मगन निज रूप मे,
जाय नहँ बहे संसार जल में ॥२॥

ईंदु दुडियंद ऐकण घरां आणिया,
जाणिया इसी पर अलख जावे।
ठिक करे सुन्न मंडल वसण ठाणिया,
प्राणिया त्रिके सुख अमय पावे ॥३॥

ग्रथा सुख वैण माखे नथी बाच सूं,
निमल हर नांम नह करे न्यारो।
स्यांम रंग हिये आराधियो सांच सूं,
साधियो "बुधा" तत पंथ सारो ॥४॥

अर्थः—"बुद्ध" कवि कहता है कि वेद और ग्रंथों में वर्णित बातों को ठीक मान कर, जिसने ग्रहण किया और ईश्वर का ध्यान चित्त में धारण किया, उसीने परम गति प्राप्त की। इसके साक्षी सन्त हैं।

इधर उधर भ्रमण करते हुए चित्त को वश में करके आत्म गुंजार स्थल (मस्तिष्क) में स्थिर कर अपने वास्तविक स्वरूप में मग्न रहने वाला इस संसार सागर में नहीं डूबता।

नासा रंध्र द्वारा चलने वाले सूर्य-चन्द्र स्वर श्वास द्वारा खींच-कर एक स्थान, जो शून्य मण्डल (मस्तक) है, वहाँ पर लाने से अलख स्वरूप जाना जा सकता है और वही निर्भय सुख को प्राप्त करता है।

मुख से वृथा वचन न कहे और निमेष मात्र के लिए भी हरि नाम को नहीं भूले तथा श्याम के प्रेम की सच्चे मन से उपासना करता रहे, वही पुरुष तत्व मार्ग का साधन कर सकता है।

—: गीत ६० :—

रटे सेस सनकाद ब्रहमाद ध्यावे रसण,
ध्यान मुन सारदा ईस धारे।
सार आगम निगम संत जन कहे सह,
विसारे मती नर देह वारे ॥१॥

हिये करतां जगन ज्याद मन हुलासे,
आद मारग लखे पग न अटके।
अगन तन आंच मिट मगन थावे अडग,
झरण इम्रत लगन लहै झटकै ॥२॥

वीण अणहद अवर घट रुण झुण वजे,
तंत झणकार धुन संख तरजे।
टिकोरां झालरी डंक ंकार वण,
ग्रेह मझ मेघ अणरेह गरजे ॥३॥

त्रवेणी मारगां सुरत कर लहे तत,
प्रगट थित नाम उर कंठ प्रवसे।
गंग निरमल करे अङ्ग सोई ऊपगत,
नीर हेको थियैं नदी नवसे ॥४॥

निरख जिण माहि ईक नाव हर नाम री,
हुवे सिमरण अठे केवटणहार।
विघन सत पंथ रा टाल केता विकट,
प्रभु सोई उतारे ऊदध भवपार ॥५॥

चोर पाचूं तणो जोर नहँ को चले,
भरम उर भरम री ग्रन्थ भागे।
कदन क्रम थियां भ्रम सदन त्रकुटी कमल,
जदन घण स्याम रंग जोत जागे ॥६॥

कुमत काने चली खिली सद गत कली,
भंवर मन रली अमलाख भ्रवणा।
निरत ऊजल हरम चडी परचे निरख,
सुणे ररंकार रट नीक श्रवणा ॥७॥

मोर तंडव करे कुसम अलसी मही,
हरी अनम्प माया हुलासे।
महज सिंघासण क्रन्त रतना सरस,
मलक निभ नूर निज रूप म्यासे ॥८॥

हुवां दरसण थिया पाप सह कोड जम,
मिटी आवागमण निमख मांही।
दिव्य नयणा दरम देखतां दयानिध,
सच्चदानंद हर आप सांई ॥९॥

पांच तत हुँत ब्रहमंड पिंड परठिया,
ऊरध मुख कंमल चक नाल ऊलटी।
जिका गुर गम गही लही ज्यां सोध गत,
सकल विध कामना थई सुलटी ॥१॥
पाप अर पुन्य सुख दुख घणीये रणा,
कला दुविघ्या तणी हुई काची।
राखजे जिकण निज धाम सीता रवण,
"सुकव बुधियो" करे अरज सांची ॥११॥

अर्थः—शेष, सनकादिक और ब्रह्मा जिसका स्मरण करते हैं, मुनि, शारदा एवं शिव जिसके ध्यान में लीन हैं, संतजन उसी को निगमागम का सार कहते हैं। उसे तू मनुष्य शरीर पाकर मत भूल।

हृदय से इस प्रकार मानसिक हवन करने से मनको अधिक प्रसन्नता होती है। उस आदि मार्ग की खोज करनी चाहिए, जहाँ नीचे को पैर अटकते तक नहीं, जिससे शारीरिक अग्नि का ताप मिटकर स्थिरता आजाती है और शीघ्र ही ईश्वर लगन रूपी अमृत का स्रोत बह चलता है।

वीणा, घंट, तंत्री और शंख के रूप में रुन झुन करता हुआ अनहद नाद गूँज उठता है। साथ ही टिकोरें झालरें आदि समाधि गृह में बेहद गर्जने लगती हैं।

ईश्वर में लीन होने का मार्ग ही यहाँ त्रिवेणी है। वह प्रकट नाभि से कंठ में बहने लगती है। ऊर्ध्वगति ही गंगा है, जो शरीर को निर्मल कर देती है। उनके संमिलित होने पर नौ सौ नदी नालों के तुल्य उनका विस्तार कहा जाता है।

ऐसे अगाध जल में एक मात्र हरिनाम ही नौका है और स्मरण ही केवट है। सन्मार्ग ही विकट विघ्नों से टालने वाला और प्रभु ही इस भवसागर से पार करने वाला है।

चोर स्वरूपी एवं विकार उत्पन्न करने वाली पाँचों इन्द्रियाँ का बल नहीं चलता, भ्रम और और मर्म की गाँठ खुल जाती है एवं कर्मों का नाश हो जाता है। भृकुटी और मस्तक में प्रभु-ध्यान रूप में आ उपस्थित होना तथा है, तब घनश्याम की अंग-ज्योति का आभास होने लगता है।

कुबुद्धि किनारा काट जाती है एवं सद्गति रूपी कली खिल उठती है, जिससे आत्मा रूपी भ्रमर इधर उधर भ्रमण करना छोड़ कर उस पर मुग्ध हो जाता है। प्राणी ईश्वर के अनुराग रूपी उज्ज्वल महल पर आरूढ़ होकर आन्तरिक ध्वनि को भली प्रकार सुनने लगता है।

जिस प्रकार मयूर का अलसी के सूक्ष्म पुष्प पर नृत्य करना असंभव है, उसी प्रकार सूक्ष्म रूप माया में विराट् रूप हरि विनोद करते हुए दिखाई देने लगते हैं और स्वाभाविक रत्न सिंहासन पर उस ज्योतिर्मय की ज्योति में मिलती हुई स्वज्योति को प्राणी देखने लगता है।

इस प्रकार हे दयासिन्धो ! हे हरि, सच्चिदानन्द ! आपके साक्षात्कार से पाप नष्ट हो जाते हैं तथा निमेष मात्र में प्राणी आवागमन से भी छुटकारा पा जाता है।

गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मुख को ऊँचा एवं ग्रीवा को नीचे कर सूक्ष्मपिंड (प्राणों) को पंच तत्व से हटा कर, जिसने ब्रह्माण्ड (मस्तक) में स्थान दे दिया, उसकी सब इच्छाएँ (ईश्वर प्राप्ति) के अनुकूल बन आती हैं।

"बुद्ध" कवि कहता है कि हे सीतापते ! ऐसे पुरुष, जो पाप-पुण्य सुख-दुःख, फल और दुविधा से घबराए हुए हैं, उन्हें आप सँभाल लेना और अपने पास स्थान देना। यही मेरी सच्ची विनय है।

रचयिता—भगवान दान

—: गीत ६१ :—

माहा रोग जामण मरण सदा सेवे मिनख,
हुवा करमा वसीभूत हाले।
वडो अचरंच जुड़ियो परच चौसरे,
झूट तज हरी (हरि) कयून झाले॥१॥

वेद संतां समजपाय सोधी विगत,
ग्यान गुर प्रमोधी जुगत गत सूं।
ओपधी प्रकासक जाणधारी ऊवर,
चाह आहर करी विमाल चित सूं॥२॥

सेस ब्रहमाद माहेस सनकादिकां,
ध्रू व प्रहलादिकां अगंम धिरणा।
कुसल नर नाग खग दनुज मुनिजन किता,
लही सा वत कही सहित लखणा॥३॥

वेद सासत्र अवर पुराणा विचालां,
भेद रामायणा समर भाखी।
वाण पद छंद संवा सबद विचारो,
सरस जग दीयै मोई परस साखी॥४॥

जाय रुज्ज अवस आवा गमण जीव री,
  कथन सत वादियां सांच कहियो।
    वीसर मत नाम सो ईसर निस दिन 'बुधा',
      राम रस लियो सोइ अमर रहियो ॥५॥

अर्थः—मनुष्य आवागमन रूपी महान् रोग की उपासना करते रहते हैं और कर्मों के वशीभूत होकर चलते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अच्छा अवसर मिलने पर भी वे असत्य का त्याग कर हरि स्मरण नहीं करते।

वेद और संतों ने जिसे खोज कर समझ पाया और विशेष युक्ति पूर्वक संसार को गुरुतर ज्ञान दिया एवं निर्मल चित्त से उन्होंने इच्छा पूर्वक प्रकट कर दिया कि ईश्वर का नाम ही संजीवनी बूटी है।

शेषनाग, ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, ध्रुव और प्रह्लाद आदि भक्तों में अग्रगण्य हुए तथा नर नाग, पक्षी, दानव एवं कितने ही पक्षी एवं दक्ष मुनि, जिन्होंने (ईश्वर विषयक) खोज की और उसका विस्तार सहित वर्णन कर बताया।

वेद शास्त्र, पुराण एवं रामायण में युद्ध-वर्णन करते समय ईश्वर के भेदों को प्रकट किया है। निर्वाण पद प्राप्त करने के लिए संतों की रचनाओं पर विचार करना चाहिए। उन्होंने साक्षात् साक्षी रूप में ही संसार को अपनी देन दी है।

सत्यवादी पुरुषों ने सत्य कहा है कि जीवात्मा आवागमन रूपी रोग से अवश्य मुक्त हो जाता है। "बुद्ध" कवि अपने को संबोधित कर कहता है कि तू उस ईश्वर को मत भूल, जिसने राम नाम रूपी रस का पान कर लिया, वही अमर हुआ है (अन्य तो आवागमन के चक्कर में पड़े ही रहे हैं)।

रचयिता—रूपा बारहठ

—: गीत ६२ :—

ग्रहियो गजराज तंत जल गहरे,
बे आंगुल सुण्डाडँड बार।
करणा-करण नांम छल केसव,
पाला सुण दोड़ियो पुकार ॥१॥

हर हुवे वाराह मार हरणाखस,
मेहे काढी पाताल मँझार।
दूजोई हरणाकुस दलियो,
पेहेलाद क सांवळे पुकार ॥२॥

करे वसत्रा अंतरं केसव,
वधियो द्रोपद चीर वसेख।
मो मुख गणया न जावे माहव,
अस प्रवाड़ां कीध अनेक ॥३॥

दीन दयाल संता सुख दायक,
करण-करण करण सिध काज।
बाला पंड हुँआ सीतावर,
मेटो जे रुगपति महाराज ॥४॥

अर्थः—हे दयालु केशव ! आपका नाम जग-रक्षक है; इसी के नुसार जब गहरे जल में हाथी ग्राह-तंतु द्वारा ग्रसा गया और दो

अंगुल ही उसकी सूंड बाहर रही, तब पुकार सुनते ही आप पैदल दौड़ पड़े।

हे श्याम तन धारी हरि! आपने वाराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष दानव को मार गिराया और पाताल से पुनः पृथ्वी को ले आए तथा प्रल्हाद के पुकारने पर हिरण्यकशिपु को नष्ट कर दिया।

हे केशव! कौरव सभा के बीच में आपने द्रोपदी का चीर बढ़ाया। आपकी ऐसी अनेक ख्यातियाँ हैं; जिनका मुख द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

हे दीनदयालु! संतों के सुख दाता, करुणाकर, कार्य सिद्ध करने वाले, सीतापति रामचन्द्र! मेरी पुकार सुन कर मुझे भी नेहरु के रोग से मुक्त करिए।

रचयिता—बख्तराम आशिया[1]

—: गीत ६३ :—

मदगलित दरियाव छंल मंगर मोटा मंही,
लाग दोटा दवे जकण लारी।
धाय गोविंद नज विरद चित धारियौ,
तारियौ दपंद जिम गाय तारी॥१॥

---

१. ये कवि आशिया शाखा के चारणों में मांडे पंचूंद व बलिया वालों के पूर्वज थे। ये वि० सं० १८०० के अन्त और १९०० के पूर्वार्द्ध में हुए थे। इन्होंने महाराजा जवानसिंहजी के संबन्ध में "जीवन-प्रकाश" नामक ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ पंचूंद में उनके वंशजों के पास अभी तक अप्रकाशित अवस्था में सुरक्षित है।

डाण सर लाग अंग छोल पड़वां डमर,
उथल पग भमर मझ दवत आपी।
दीन बंध दौड़ सुणतां जगत दापियौ,
राखियौ मतंग जिम धेन रापी ॥२॥

मज विषम भरायां सोक नालौ वहण,
उछल् जल् करायां थोक अण पार।
हरी गज जेम जुग धेन मल् हारतां,
वार नह तारतां लगी जिण वार ॥३॥

दपायौ दीन बंध पणौ नजरां दहूँ,
सत जिण भरोसै जीप साजै।
रंभीरण जेम तारण गऊ ताल् री,
बरद गोपाल् रौ भलां बाजै ॥४॥

अर्थः—हे गोविन्द ! छलकते एवं तूफान पर आए हुए तालाब के प्रवाहित नाले में छिपे हुए मगर ने बहती हुई गाय का पीछा किया उस समय आपने विरुदों का स्मरण कर, जिस प्रकार पहले (मद-मसित) हाथी को पार लगाया उसी प्रकार इसे भी पार लगाया।

तूफान पर आए हुए तालाब के मध्य भँवर के कारण उस गाय के पैर लड़खड़ा गए और डूबने ही वाली थी; परन्तु, हे दीनबन्धो ! आप ही उसे बचाने को दौड़ पड़े, जिससे सबने यही कहा कि ईश्वर ने जिस प्रकार गज को बचाया, उसी प्रकार गायकी रक्षा की।

गंभीर ध्वनि करता हुआ तालाब का जलपूर्ण नाला जोर से प्रवाहित हो रहा था, उस में पड़कर वह गाय पत्थरों से टकराने लगी,

परन्तु हे हरि ! उस अशक्त धेनु को गज के समान पार करने में आपने विलम्ब नहीं किया। ❀

हे गोपाल !, आपने दीनबन्धुत्व को सार्थक कर दिया। आपके ही भरोसे सन्त पुरुष आनन्द मनाते हैं। आपने गज की तरह गायको बचा कर अपनें विरुदों को श्रेष्ठता दे दी।

❀ नोटः—अति वृष्टि होती थी। उदयपुर के प्रसिद्ध तालाब पिछोला में आने वाली नदी में बहती हुई एक गाय आई और मगर, भँवर तथा नाले के पत्थरों से टकराती हुई भी सुरक्षित अवस्था में तालाब से बाहर निकल गई। उसी घटना का इस गीत में कवि ने वर्णन किया है। यह घटना महाराणा जवानसिंह के समय घटी थी।

रचयिता—वेदा

—: गीत ६४ :—

ब्रह्मा मिस कहै सुणो ब्रज नायक,
ब्रज दीठाँ नहैं समा वधीर।
अमरां पद दीजै आहीरां,
हर मोनू कीजै आहीर ॥१॥

चत्रमुख ईस पारथै चत्रभुज,
कौतुहल गोकुल सुख काज।
देवां अमां छांडी देवाई,
महिरांई पावां महाराज ॥२॥

वेदो घर हर चवै वीणती,
नरखै मधुवन तणी नवास।
व्रज वासी कयलास वसा,
किसन अमां दीजे व्रजवास ॥३॥

जमनां तट वंसी वट जोवां,
छांडां कदे न येक छिन।
काम धेन कलु-व्रछ रद कीधा,
कलप धेन कदमां किसन ॥४॥

लछवर लार गोपियां लूटां,
मारग मही दही रा माट।
ईन्द्रलोक वैकूंठ ईखतां,
नंद लोक फूटरो नराट ॥५॥

अर्थः—ब्रह्मा और शिव कहने लगेः—"हे व्रजेश हरि! हम व्रजको देख कर अधीर से होगए हैं। अतः आप अमर पद (देवताओं का पद) अहीरों (एक गोचर जाति) को दे दीजिए और आप हमें अहीर बना लीजिए।

चतुर्मुख (ब्रह्मा) और शिव ने चतुर्भुजधारी विष्णु से प्रार्थना की कि हे प्रभो! गोकुल के सुख प्रद कौतूहल के लिए हम देवता अपना देवत्व छोड़ने के लिए तय्यार हैं। आपतो हमें मिहिर (एक गोप जाति का) पद दे दीजिए।

वेद के धारण कर्ता (ब्रह्म) और शंकर विष्णु के प्रति विनय करने लगे कि मधुवन के स्थानों को देख कर हम लालायित हैं। आप व्रज वासियों को कैलाश में और हमें व्रज में बसा दीजिए।

यमुनातट और वंशीवट को हम टकटकी लगाकर देखते रहेंगे, क्योंकि कामधेनु को व्रज की कपिला गायों ने और कल्प वृक्षों को वहाँ के कदम्ब वृक्षों ने, हे कृष्ण ! तुच्छ कर दिया है।

हे लक्ष्मीपति ! ऐसा अवसर दीजिए कि हम मार्ग में गोपिकाओं से मट्टा (छाँछ) और दही की हंडियाँ लूटें। ऐसे कौतुक के सामने इन्द्रलोक और वैकुण्ठ से भी हमें नंद लोक (नंद गाँव) सुन्दर मालूम देता है।

रचयिता—शक्तिदान खाबड़ा

—: गीत ६५ :—

रघू पालतो संत खल' काज वैराट'तो,
उरड़ खम फाटतो' थके थरडींग।
चख कियां चोल मुख धजर नख चाटतो,
ग्रमे मद थाटतो उमे नरसिंग ॥१॥

सचंतो भगत पहलाद हरी साद सुण,
अचंतो असुर अरि धड़क अप्राज।
डींगला हरणकुस तणा करी डचंतो,
उचतो विड़द हद विहद अगराज ॥२॥

नाग फुण कमठ पीठ पैं धका नमावे,
दिखावे सुरां असुरां कई दाव।
धाव रा पंजा साचरा बहावे,
रहावे विने पख दूझरां राव ॥३॥

सा लुळे पवजा गिळे गजां सुरंग,
रुळे घाखर तर अडूर रीड़े।
सळे छंछटा घटा ऊछट धारखित,
हार अंत्रावलां गळे हीड़े ॥४॥

ओभळे लाछ ब्रहमाण हर अमर अत,
पड दपत उतोले करे पीठो।
गालवो सत्रहरां घालवो गल ग्रजे,
दूठ लंकाल विकराल दीठो ॥५॥

सुधा धर रमा अज ईस सुर स थापे,
सुथापे सुजस ग्रहं पुर सत्रायो।
मार गज वड्डो अवतार वेढीमणो,
असंत उथाप संत थाप आयो ॥६॥

अर्थः—संत (प्रह्लाद) की रक्षा एवं दुष्टों के नाश के लिए विराट् रूपधारी प्रभु अपनी टक्कर से स्तंभ को विदीर्ण करता तथा अरुण नेत्र, मुख पर रोष छाए हुए, नख चाटता हुआ नृसिंह (अपने) 'अपने अभय दान देने वाले' विरुद को निभाता हुआ सामने आ उपस्थित हुआ।

स्मरण करते ही नृसिंह प्रह्लाद को उच्च पद देता हुआ गर्जन करके दीर्घकाय दानव हिरण्यकशिपु का रक्त पीता और नाश करता तथा अपने विरुदों को निभाता हुआ दिखाई दिया।

नृसिंह अपने पदाघात से शेष के फन एवं कच्छप की पीठ को नमाता हुआ तथा देव और दानवों के समक्ष दुष्ट पर दाव देता एवं

अचूक कराघात करता हुआ दोनों (भक्त-रक्षक एवं दुष्टनाशक) विरुद निभाने लगा।

गज-नाशक सिंह का रूप धारण किए हुए नृसिंह ने उस दानव को अपने पंजों से चीर कर नमा दिया और स्वयं रक्त-रंजित होगया। उसके द्वारा मारा गया वह दैत्य काटे गए बकरे की तरह तड़फड़ाने लगा। उसके शरीर पर रक्त की बूँदें उछलने लगीं। उसकी अंतड़ियाँ हार के समान नृसिंह के गले में झूलने लगीं।

(उनका भयंकर रूप देखकर) लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव और देवता-गण चकित होगए नृसिंह ने उनके देखते हुए दानव के शरीर को कुचल दिया और चूर कर पिट्टी बना दिया। उसने गर्जना करके शत्रुओं का नाश किया और भयंकर रूप धारण कर लिया।

चन्द्रमा, लक्ष्मी ब्रह्मा, शिव और सूर्य आदि देवताओं को धैर्य बँधाया, त्रिलोक में अपना यश फैलाकर विनाशकारी सिंह का रूप धारण किया और दुष्ट दानव का नाश कर भक्त (प्रह्लाद) को राज्य पर स्थापित किया और अपने स्थान को पुनः लौट गया।

रचयिता—समरथसिंह

—: गीत ६६ :—

भंगा खलक्के हजार भलक्के राकेस गोटे,
भलक्के अगन नेत्र बळे धोम भाळ।
चलक्के करट कांने कोट सूर तेज चळे,
बलावता कंठ राजे नाग बकराळ॥१॥

वणे कंठ रुण्ड (मुण्ड) माल नील कंठ रेख वणे,
घाममे वसत्र वणे भभूत चढाव।
वणे कटि मेखला त्रशूल तणा टूकरणे,
वणे थ्रो महेस तणो अनेस वणाव ॥२॥

गड़क्के केहरी सीह दड़क्के व्रषभ-गोढे,
वप अमरत चद (त्राग) टूकड़ा वसंत।
फणाकार-हजारमें सेहस नाग कोट फावे,
केताई देवता रुद्र आदेश करंत ॥३॥

जटाधारी तपधारी नीलकण्ठ धारी जोगी,
धारी राग डंड धारी नादमें धुनेस।
उमियाण कतिधांण डोमरु धारीआं ईम,
भोगधारी जोगधारी जुरार भुनेश ॥४॥

समरथ कहे एम सुप्रसन हो एम प्रभु,
हेल रंक राव करे असाधारा हाथ।
नंदी नाथ सुरांनाथ नरां नाथ कहे नाम,
नमो नमो रूप थारो पारवती नाथ ॥५॥

अर्थः—हे समर्थ शिव ! आपके मस्तक पर गंगा की सहस्र धारा प्रवाहित है; समीप ही बाल चन्द्रमा प्रभा फैला रहा है; वहीं पर सधूम्र ज्वाला फैलाता हुआ तृतीयनेत्र है; पास ही करोड़ों सूर्य सा तेज प्रसारित करते हुए कानों में कुंडल चमचमा रहे हैं और कंठ में भयानक सर्प सुशोभित हैं।

कंठ मुंड माल एवं जहर की नीलिमा से सुशोभित है, (गज) त्वचा के वस्त्र और विभूति से शरीर शोभायमान है। कमर में मेखला एवं लोह शलाकाओं से जुड़ा हुआ त्रिशूल हाथ में है। हे महेश! आप ऐसे साजों से शोभा पाते हैं।

हे रुद्र! आपके आतंक से एक ओर समीप ही देवी का सिंह गर्जना कर रहा है और दूसरी ओर आपका वाहन नंदी धुकार रहा है। विष और अमृत चन्द्रमा और अग्नि (तीसरा नेत्र) विरोधी होते हुए भी समीप न बसते हैं। सहस्र फन फैलाए हुए शेषनाग जैसे करोड़ों सर्प आपके समीप शोभित हैं और कई देवता आपकी वन्दना करते हैं।

हे भूतेश! आपको जटाधारी, तपधारी, नीलकंठधारी, नाद में रागों के स्वामी, उमापति, कार्तिक स्वामी के पिता डमरु धारी, ईश, भोगधारी, योगधारी और पुराण पुरुष कह कर लोग पुकारते हैं।

इस प्रकार स्मरण करने से आप प्रसन्न होकर रंक को राव बना देते हैं। आपके नंदीनाथ, देवताओं के स्वामी, गिरिजापति आदि कई नाम हैं। हे पार्वती के स्वामी! आपके ऐसे स्वरूप की मैं वन्दना करता हूँ।

रचयिता—सादूदास भूला[1]

—: गीत ६७ :—

आसा नर किसन तणो तजि ओलो, सरगहे मुख वर्णा संसार।
छांड कितीपक वीर छीपतो, गुड़ी ऊफीजी तणो गँवार ॥१॥

---

१ यह भूला शाखा का चारण कवि था। बागड़ प्रान्तान्तर्गत नाहरवा आदि ग्राम का निवासी था। उसकी रचना भी १७२१ के संग्रह में उपलब्ध है।

माया तणों म पड़ महणारम, बुडेस हर विलगा विण बाह।
यार कीतो सुरस वीरामो, उडती निहंग तणी परछांह ॥२॥

माया छाया तणो मोहियो, श्रोबुध पड़े भोगे अवस।
पड़ियो वस तूं तणे पड़ाई, वहे पड़ाई पवन वस ॥३॥

हर सरखो विसारज हेतू, तूं जाणे बुध तूझ तणी।
भमती पड़ती तणे मरोसे, घांम टाल चाहम घणी ॥४॥

हे मूर्ख प्राणी ! आशा-वृक्ष रूपी कृष्ण का सहारा त्याग कर तू सांसारिक सुखों को सराहता है; परन्तु वह तो उड़ती हुई पतंग के समान है। उसकी छाया नाम मात्र की है।

हे मूर्ख ! माया रूपी महासिन्धु में तू मत पड़ ! तू हरि के हाथ पकड़े बिना उसमें डूब जायगा। अन्य का सहारा तो उड़ती हुई पतंग की थोड़ी सी छाया के समान है।

हे अबोध ! माया की छाया पर मोहित हुआ तू कर्मों का भोग अवश्य भोगेगा ! तुझे परवश होकर जैसे पुरवाई पवन के सहारे बादल चलता है, उसी प्रकार (झुरता हुआ) चलना पड़ेगा।

हरि को भूल कर तू अपने को बुद्धिमान मानता है और भ्रमण करती हुई (उड़ती हुई पतग) के भरोसे ताप मिटाना चाहता है, यह तेरा एक मात्र भ्रम है।

—: गीत ६८ :—

त्रिसा तन तढि त्रिसा तन तावड़,
होंणि वियोग न रोग न होइ।

मोन्‌ तठा वासिजे माद्व,
काली कहे न गोरी कोइ ॥१॥

खेवन वेघ विगेषन सुधिया,
क्रूड़ करम तन कालक मोग।
मोसिड़ सेवा सौ मदसूदन,
खक रुदन तन रावन गेस ॥२॥

ग्रीसण ताप सराप न पाप न,
थटक हटक तन चटक अंघार।
वासि मुनी तेथि व्रजवामी,
सटक न कटक खंघार ॥३॥

ज (ग) न जम डर मरण न जामण,
पीड न परिमत्र पय स पयांण।
विर वर गिर मुनी वासिऊं तिणि गिहि,
दूत दुकाल न थाण न दांण ॥४॥

अर्थः—हे माधव ! मुझे ऐसे स्थान पर बसाइए, जहाँ न तृष्णा, न प्यास, धूप, न भविष्य का भय न वियोग, न रोग और न काले और गोरे वर्ण का भेद हो।

हे मधु सूदन ! मेरे से जैसी भी सेवा बन पड़ी, उसको सोचते हुए तू मुझे पीड़ा, झगड़े, विरोध, क्षुधा. बुरे कर्म, कलंक, उलाहना, स्वामि-कृपा के लिए रोना और राजाओं का क्रोध सहन करना आदि झंझटों से बचाना।

हे ब्रजवासी (कृष्ण) ! मुझे निवास के लिए ऐसा स्थान देना— जहाँ शत्रुओं का भय न हो, न आप और पाप ही हों, न बाधा न अंधेर हो, न खटका (खतरा) हो न भटकना ही पड़े और न कन्धारियों (यवनों) के दल ही की आशंका हो।

हे गिरिधर ! मुझे ऐसे गृह में स्थान देना जहाँ जरा, यमका भय, आवागमन का चक्कर, पीड़ा, अन्य लोक में जाना, चुगलखोर, दुष्काल, किसी की दुहाई और मादकता न हो।

—: गीत ६६ :—

पछितावै कांइ प्रीछि पालीतौ,
जीव गमार विचारे जोइ।
काठी ग्रहे ओलगत केसव,
तो काठीयां न होवत कोइ ॥१॥

द्वारपाल नहँ देत दुहाई,
घर काजि फिरत न घरा घरि।
हरी पावड़ी उजालत हाथे,
हाथ न मांडत राइ हरि ॥२॥

पइ दारे (द्वारे) द्वारे पालीतो,
मम करि रघुरास विचारि मनि।
इम जौ करत अनंत मुद यागी,
इम न करत आगली अनि ॥३॥

अधपति द्वारि अंम्हीण आतम,
राखै जिणि तिणि ठोड़ रहि।
टहल करत हरि महल तणी तू,
महल हुवत तो महल सहि॥४॥

अर्थः—हे मूढ़ प्राणी ! तू पश्चाताप क्यों करता है। यदि तू ठीक तरह से सोचे तो तू ईश्वर के द्वार पर पोषण पाने वाला है, दृढ़ता पूर्वक केशव का स्मरण करे तो तुझे कोई भी कलंकी नहीं कह सकता।

हे जीव ! प्रभु के द्वार पर दुहाई देकर रोकने वाला कोई द्वार-पाल भी नहीं रहता, न घर की इच्छा से प्रत्येक घर पर ही विचरण करना पड़ता है। हरि के मन्दिर की सिढ़ियों को छूकर तू अपने हाथों को पवित्र करले तो फिर राजाओं के सामने हाथ भी नहीं पसारना पड़े।

हे मूढ़ ! पराये द्वार पर टुकड़े पाकर गर्व न कर, मन में सोच, यदि यह दीनता अनन्त प्रभू के समक्ष करे तो तुझे किसी दूसरे के सामने इसप्रकार दीन होकर न रहना पड़े।

हे आत्मा ! यदि तू राजाओं के द्वार पर गया तो वे जहाँ जैसा भी स्थान देंगे वहाँ रहना पड़ेगा, हरि के राज प्रासाद की शरण लेने पर तो तुझे अनायास ही उन्नत महल रहने को मिल जायेंगे।

रचयिता—सूर्यमल आशिया[1]

—: गीत ७२ :—

सरण करो नर सेव भगवान समरत्थ री,
हे सदा सहायक प्राण दाता हरी।

---

१ यह आशिया शाखा का चारण कवि था। यह ग्राम कड़ियाँ (मेवाड़) निवासी आशियों का पूर्वज था। इसकी रचना १८०० के अंत और १९०० वि० सं० के आरम्भ की है।

डावड़ो जिवायो मीच जण सूं डरी,
रूप चत्रभुज करी वेल रायसिंघ री[१] ॥१॥

सादड़ी "राय" वले नोकर साम सूं,
हरामी करी धर लोभ चित हाम सूं।
चाढण धारियां गुल जकण चांम सूं,
दया कर छत्री यक छुडायो दाम सूं ॥२॥

जेण चाकर कह्यो वचन सांचा ज्युंहीं,
निमख अनखाय कर कदे बदलूं नहीं।
स्याम गढधोर रो बीच दीधो सही,
चित दगो करण री हेक पख में चही ॥३॥

---

२ सारंगदेवोत रायसिंह सादड़ी का निवासी था। उसका एक अवानसिंह नामक ११ वर्ष का पुत्र था। रायसिंह के पास एक नौकर था। उसने उसके साथ पहले भी विश्वासघात किया; परन्तु रायसिंह ने क्षमा कर दिया। नौकर ने भविष्य में विश्वासघात न करने की ईश्वर को साक्षी करके शपथ खाई। उसके बाद उस पापी ने अपने स्वामी के पुत्र, जिसके शरीर पर साधारण जेवर थे, को लालच में आ मारकर गाड़ दिया। भगवान ने भक्ति के वश में होकर उस गड़े हुए बच्चे को निकाला और जीवनदान देकर उसके माता पिता के पास पहुंचा दिया। उस बच्चे के गले पर छुरी से काटने के चिन्ह रह गए। महाराणा स्वरूपसिंह को इस घटना का पता लगा। महाराणा ने उस बच्चे को बुलाया और भगवान चतुर्भुज के स्पर्श के कारण उसके गले को पानी से धुलवाकर पिया। घटना वि० सं० १९०४ में घटी। इस पद्य का रचयिता कवि उस समय मौजूद था अतः यह पद्य उस घटना का प्रमाण है।

सुतन रायसिंघ रो जवानों नाम सभ्भ,
एकदस वरस री अवसता गयी अज ।
ले गयो वीड़ मभ्भ चोरटो नर नलज,
मांजणो लंकगढ न जाणे चतरभुज ॥ ४ ॥

देखवा रू ंख चढ भालियो चहूँ दस,
नजर कोय मानवी न आयो बीत लिस ।
ऊतरे रूख सू ं रीस भरियो अवस,
एक लत हणी लत वहीजे जाण अस ॥ ५ ॥

दांत ममतक छेद कँठ सारे दियो ।
गण सिसू नेसमभ्भ ग्रहत भू गाडियो ।
च्यार दम रुप्यारो माल लेण मन चह्यों,
गोल नरमे थको गांम मांहे गयो ॥ ६ ॥

दो घड़ी दिवस रहतां रंघय-दीन रा,
राम लछमण जके नाथ पुर तीन रा ।
रूप चत्रभुज दिहूँ उरां भूपी नरा,
महा अवतार चोवीस गिहूं मीन रा ॥ ७ ॥

गज तणी अरज सुण उवारे लियो गज,
अधक उण हूँत या विना कीधां अरज ।
त्रीपहर निसयी तिण सिसु देह तज,
राम लछमण किया जीवना खोद रज ॥ ८ ॥

श्री सु कर परस सोहो अंग किया सावता,
जल त्रखा पूछ पावे किया जावता।
ग्रद कलप अनेका दीन वद छावता,
फेर कीधा जगां माइया फावता॥ ९॥

बांह दिहु टावियां गांम मझ वालका,
पधारे साथ जग करण प्रतपाल का।
करधणी पणो खेरे रदन काल का,
मेल घर कुसल सिसु घरण वनमाल का॥१०॥

दुसट क्रत कियो जिण नूं सज्या दराई,
काट नासा ऊभे कूंप चख कराई।
सत वरत देख सोहोड़ां गरज सराई,
हेक छन मांझ चंता सरव हराई॥११॥

आच ग्रह गरीबनवाज विप अधारे,
ग्रद तणी क्रीत भुवलोक विच वधारे।
सुरां कज जेम सुभ कज नरां सुधारे,
पछे निज धांम त्रयलोक पत पधारे॥१२॥

हाजरी उदैपुर देण सारंगहरा,
आय त्रप कदम जे दसम लग ऊपरा।
भाल परचो प्रसन हुंवा नर भूप रा,
रीझ पावा करां भूप सारूप रा॥१३॥

चत्रभुज रूप त्रिमल क्रपा चहीजे,
क्रीत कथ सुणी देखी जिका कहीजे।
लखां कोड़ां जुगां त्रिजे जस लहीजे,
राण सारूप रे साय नत रहीजे ॥१४॥

अर्थः—कवि कहता है कि हे मानव! सभी को चाहिए कि उस समर्थ भगवान की सेवा करें। यह प्राणदाता हरि सदा सहायक है। उसने मृत बालक को जिला दिया। उसके समक्ष मृत्यु भी भयभीत होगई। ऐसे प्रभु रूपजी एवं चतुर्भुजजी हैं, जिन्होंने रायसिंह की सहायता की।

उस मादड़ी वाले रायसिंह के नौकर ने लोभ में आकर अपने स्वामी से नीचता की। अतः जेरबन्द (घोड़े के जबड़े तले मुहरे से बांधे जाने वाले चमड़े) से उस दासी पुत्र को मार दी जाने पर एक राजपूत ने दण्ड स्वरूप द्रव्य देकर उसे छुड़ाया।

इस अपराध के बाद भी सेवक ने अपने स्वामी रायसिंह को वचन दिया कि मैं अब आपका अन्न खाकर कभी भी आप के साथ विश्वासघात नहीं करूंगा। आपके मेरे बीच में गढ़बोर के स्वामी (भगवान् चतुर्भुज) साक्षी हैं। इसके पन्द्रह दिन बाद उस नीच ने स्वामी के साथ पुनः विश्वासघात करना चाहा।

उस समय रायसिंह के पुत्र अजानसिंह की आयु ग्यारह वर्ष की थी। उसे फुसला कर यह चोर प्रकृति का निर्लज्ज सेवक बीड़ (तृण-भूमि) में ले गया। वह उस समय लंका—दुर्ग के नाशकर्ता चतुर्भुज (भगवान) को भूल गया।

कोई देख न ले इस विचार से उस दुष्ट ने वृक्ष पर चढ़ चारों ओर देखा। उसे कोई मनुष्य आता जाता दिखाई नहीं दिया इतने

में रात होने का समय भी निकट आगया। तब वह पापी वृक्ष से उतरा और क्रुद्ध होकर बच्चे पर इस प्रकार पद-प्रहार किया, जैसे घोड़े ने दुलत्ती मारी हो।

उस दासी पुत्र ने उस बालक के मस्तक और दाँतों को छेद दिया तथा गले पर कटारी का वार किया। फिर भय से उसे अबोध बच्चा समझ जमीन में गाड़ दिया। उसने बच्चे के पहने हुए थोड़े से मूल्य वाले आभूषणों के लालच में यह हेय कार्य किया और गाँव को लौट आया।

दो घड़ी दिन शेष रहने पर, दीनबन्धु, रामस्मरण के स्वरूप रूपदेव एवं त्रिलोकीपति चतुर्भुज जो मनुष्यों के हृदय में नरेश्वर स्वरूप और संसार जिसे मत्स्य वाराह आदि चौबीस अवतार मानता है।

ऐसा प्रभु गज की रक्षा के लिए पुकारने पर आया; परन्तु बच्चे की ओर से पुकार ने वाला कौन था? अतः वही प्रभु बिना पुकारे ही आ उपस्थित हुआ और दिन के तीसरे पहर जिस बच्चे के प्राण-पखेरू उड़ गए थे, उसे गड्ढे से बाहर निकाल पुनः जीवित कर दिया।

अपने हाथों से स्पर्श कर उसके कटे फटे सारे शरीर को ठीक कर दिया। फिर उसे प्यार कर पानी पिलाया। कहते आए हैं कि वह दीनबन्धु अनेकों कल्पों के अन्त में मन भाती सृष्टि की रचना करते रहते हैं। बच्चे को बचा कर उसने अपने उसी कर्तव्य का परिचय दिया।

संसार का पोषण करने वाला वह प्रभु (रूपजी और चतुर्भुज) अपने हाथों में उस बच्चे के हाथ पकड़ कर उसे गाँव में ले आये। जिस नीच दासीपुत्र ने बच्चे के नाश हेतु काल को निमन्त्रित किया था, उसने उसके दाँत तोड़ दिए और उस वनमाल धारी ने बच्चे को सकुशल उसके घर पहुँचा दिया।

नाच कर्म करने वाले इस दुष्ट (दासीपुत्र) की नाक कटवा दी और दोनों आँखें फुड़वा दीं। इस प्रकार प्रभु द्वारा सत्यव्रत पालन को देख कर सब ने प्रशंसा की और क्षणमात्र में चिन्ता दूर कर दी।

अपने विरद "ग़रीब निवाज़" का पालन करते हुए त्रिलोकपति ने अपने हाथों से बच्चे की रक्षा कर अपने विरुद में वृद्धि कर दी। जिस प्रकार देवता और मनुष्यों के शुभ कार्य की पूर्ति के लिए प्रभु आता रहता है, उसी प्रकार सहायतार्थ आकर वह अपने स्थान को लौट गया।

वह सारंगदेवोत रायसिंह दशहरे पर नौकरी देने को उदयपुर आया। उसकी ईश्वर के प्रति सच्ची लगन और प्रभु कृपा को देख कर महाराणा स्वरूपसिंह बड़े प्रसन्न हुए (और उसके बच्चे को, जिसे ईश्वर ने बचाया था, बुलाकर महाराणा ने) उपहार दिया।

कवि सूरजमल कहता है कि हे रूपदेव एवं चतुर्भुज प्रभो! आपकी कृपा चाहता हूँ और आपकी कीर्ति की ख्याति जैसी मैंने देखी और सुनी है, उसी का मैंने इस गीत (पद्य) में वर्णन किया है। इसी प्रकार आप लाख और करोड़ वर्ष तक विजय और यश प्राप्त करते रहें और महाराणा स्वरूपसिंह के सहायक बने रहें।

रचयिता सोम

—: गीत ७१ :—

कोटि ब्रह्मंड रोम मांहि मोडै कर्‍यं,
 अगम है निगम वाद नेति नेति उच्चरै।
 ध्यान सुकदेव नारद जै मन धरै,
 धार गोवालियां वांह कांधै धरै॥१॥

कर्या प्राक्रम ताइ सेस न सकै कली,
वंछै जै चरणरज सीसि ब्रहमावली।
भाव घण गोपियां कुसन प्रीत्यै भली,
साद द्यै कदम चढि पीय पी–समली ॥२॥

जजै जाइ कोटि जिण वेद मंत्र ब्रहम जण,
घृत पुलत हविस द्रव ज्याग होमंत घण
नाम जै दीनबँध तेणि काजि नारयण,
जमेते जसोमति (मात) हत्थी जमण ॥३॥

गाइ गुण सारदा पार न लहै गणँ,
भाव करि नांम मंत्रांन तोइ ब्रहमा भणँ।
कड़छि कन्ह पीतपट बाँधि पलवट कणी,
श्रावि दूहै सुरभि नंदनै श्रागणँ ॥४॥

देखि भ्रूभंग मन काल श्रांणति डर,
श्रछै कुण मात्र जगि देव दाणव श्रवर।
भगत वच्छल विरद तूझ हरि तेज भर,
सरण दै "भीम" नू कहै राधा–सुवर ॥५॥

श्रर्थ:—वह चाहे तो करोड़ों ब्रह्माण्ड का अपने हाथों से एक क्षण में नाश और निर्माण कर सकता है। वेद,पुराण,शास्त्र जिसे "नेति-नेति" कह कर वर्णन करते हैं, जिसका ध्यान शुकदेव और नारद जैसे ऋषीश्वर मन में धरते हैं। उसी प्रभु के गले में गलबाँही डाल कर ग्वाल विचरण करते हैं।

इसने जो पराक्रम किए, उसका वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकता। जिसके चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाने के लिए स्वयं ब्रह्मा भी इच्छुक है। ऐसे कृष्ण के साथ श्यामा गोपिकायें भावयुक्त प्रेम पालन करतीं एवं कदम्ब पर चढ़ कर पिऊ २ पुकारती हैं।

कोटि युगों तक ब्रह्मा घृतादि यज्ञ सामग्री होमता हुआ, जिसकी वेद मंत्रों द्वारा जय-जयकार करता रहता है जिसको दीनबन्धु नारायण कहके पुकारते हैं, वही प्रभु माता यशोदा के हाथों भोजन करता है।

जिसके गुणों का पार शारदा भी नहीं पा सकती. भावनायुक्त ब्रह्मा जिसका वेद मंत्रों द्वारा नामोच्चारण करता है, वही कृष्ण कमर पर कछनी और कटि-बंधन आदि कस कर नंद के आँगन में धेनु दुहाता है।

"सोम" कवि कहता है कि हे हरि! आपकी भृकुटी चढ़ी हुई देख कर मन में अतक को भय उत्पन्न होता है; तब देवता और दानवों की तो बात ही क्या? आपका विरद "भक्तवत्सल" है। हे राधा-वल्लभ! आप मुझे भी शरण दीजिए।

रचयिताः—हरा

—: गीत ७२ :—

पलन करी जेज आवियो पालो,
सिंधुर री फरियाद सुणे।
आवे धणी जसी पल आयाँ,
तीकम साचे संत तणे॥ १॥
पड़ताँ लागी वार पंचाली,
विनती सुण सांवरियो वीर।

आखे हूत अनोखी आतुर,
चत्रभुज ते पूरी अत चीर ॥ २ ॥
धरणीधर जाटा धंना रो,
अन बायां बन पूरी आस।
साटे सेंण तणे ते साहेब,
खजमत कीधी होय खवास ॥ ३ ॥
नरसी तणा पूरिया नामां,
नकद रुपय्या दीनानाथ।
लायो गरै बालद ललकारे,
सत कबीरो करण सुनाथ ॥ ४ ॥
बलरै द्वार छड़ी ले बैठो,
दे छत्र कियो भभीषण दास।
कोडां धणी सदामो कीधो,
पीदो दूध नामदे पास ॥ ५ ॥
ध्रू प्रहलाद तणो धणिआपो,
कीदो ज्यू करतार करै।
सबळे नांम धणी सांभलियो,
सबल ई सबला काम सरै ॥ ६ ॥
तू पगले पगले तीकम,
ऊभो भगतां भीर युंही।
आवे भीर करेवा आतुर,
जरणी बालक काज ज्युंही ॥ ७ ॥

हो व्रजनाथ भगत रा हेत,
धरणीधर ऊजलाद धणी।
दीन दयाल "हरो" यूं दाखे,
तू लज राखे मूझ तणी ॥ ८ ॥

अर्थः—हे त्रिविक्रम (वामन)! आपने गज की पुकार पर पल मात्र का भी विलम्ब नहीं किया। अति शीघ्र पैदल ही दौड़ पड़े। उस पुकार करने वाले भक्त (हाथी) की रक्षा करने आप इस प्रकार दौड़े जैसे स्वामी अपने सेवक के लिए दौड़ता है।

हे चतुर्भुज धारी श्याम! पांचाली पर आपत्ति पड़ने पर उसने हे श्याम! कह कर पुकार की। तब आप अपूर्व ढग से दौड़ पड़े और उसका चीर बढ़ा दिया।

हे धरणीधर स्वामी! बिना बोए ही धन्ना जाट के कृषि उत्पन्न करदी और सेना नाई के बदले स्वयं जाकर चौर की।

हे नाथ! नरसी महता की पौत्री के विवाह में आपने मातुल पक्ष की रस्म को नकद रुपया खर्च करके अदा किया और कबीर के यहाँ टांडा घेर कर ले आए।

हे प्रभो! आप बली के द्वारपाल बने, विभीषण के मस्तक को छत्र से सुशोभित किया, सुदामा को करोड़ पति बनाया और नामदे के यहाँ पय-पान किया।

हे साँवरे! आप सबल स्वामी हैं। आपने ध्रुव और प्रह्लाद पर स्वामी के समान ही कृपा की और जैसा आपका नाम है, वैसा ही अपने अपूर्व काम किया।

हे त्रिविक्रम ! आप पद २ पर भक्तों के सहायक होकर खड़े हुए हैं और सहायता के लिए शीघ्र ही इस प्रकार दौड़ कर आ जाते हैं, जैसे शिशु की पुकार पर माता दौड़ कर आती है ।

"हरा" कवि कहता है:—हे व्रजपति, धरणीधर, पवित्र स्वामी, भक्तवत्सल, दीनबन्धु ! मैं आपसे यही विनती करता हूँ कि आप मेरी लाज रखियेगा ।

रचयिता—हरिसिंह उगावत

:— गीत ७३ :—

आसण गजखाल वाघंबर ओढण,
भूषण पिनँग अरोगण भंग ।
भलहल भाल सुधाकर भलके,
गुमट जटा मभ खलके गंग ॥१॥

सेली नाद भूलका सांगी,
मांडअरोड़ भूत गण साथ ।
माला मूंड फबे गल मांहे,
नमो विसंबर भोलानाथ ॥२॥

उमियां संग सूल धर आवध,
कर प्यालो नर लीध कपाल ।
बारमबार अरोगण बूंटी,
मदन-अरी मातो मतवाल ॥३॥

---

१ यह कवि खड़िया शाखा के चारणों में हुआ । स्थान अज्ञात है ।

शंकर—देव निवाजण संतां,
मसमी अंग डिगम्बर भेप।
सुर तेतीस क्रोड कह सारा,
आडम्बर थारा आदेस ॥४॥

अर्थः—हे शिव! आपके पास गज एवं सिंह की त्वचा ओढ़ने और बिछाने को है। सर्प ही आपके भूषण तथा पीने को भंग है। आपके ललाट पर चन्द्रमा चम-चमा रहा है और जटा जूट से गंगा प्रवाहित हो रही है।

हे विश्वंभर भोले शिव! मैं आपकी वन्दना करता हूँ आप शेलीका नाद करते हुए शोभित हैं। आपके झोले में सिंगी तथा आप वृषभ पर आरूढ़ हैं। भूत ही आपके साथी और आपके गले में मुण्ड-माला शोभा पा रही है।

हे मदनारि! आपके साथ उमा है। त्रिशूल ही आपका शस्त्र, नर कपाल ही आपके पात्र और यार रे आप भंग आदि का पान करके मतवाले बने रहते हैं।

हे शंकर! आप संत और देवताओं पर कृपालु हैं, आपके अंग पर विभूति तथा आपका स्वरूप दिगम्बर है। आपके ऐसे ठाठबाट को देख कर तैंतीस ही करोड़ देवता प्रशंसा करते हुए आपकी वन्दना करते हैं।

रचियता—हमीर[1] मेहडू

:— गीत ७४ :—

जिण नाम लियां दुख दालिद्र जाये,
घणो हुवे सुख लाभ घणो।
याधे मांनवि रांम चीळड़े,
तिसो नांम श्री रांम तणो ॥१॥

चुगे विघन वेद नहँ विआपे,
मिटि अघ पावन हुये मन।
जिहड़े भजन संसार जीपिजे,
भगवत रो इहड़ो भजन ॥२॥

भूत प्रेत डाकणि डर भाजे,
दुरदिन आवे नहीं दिसो।
अकरम टले चढ़े निति ऊजम,
अम्रितपांन हरिनाम इसौ ॥३॥

सम्पती संपती सुमति सांपजे,
दूर रहे दुरमती दुयण।
थिये हमीर मीर जिम थारी,
गिरधारी रा गाइ गुण ॥४॥

---

१ यह कवि मेहडू शाखा के चारणों में हुआ है। इनका स्थान जयपुर जिला के ग्राम सरस्या आदि स्थानों में होना ज्ञात होता है।

जिसके स्मरण मात्र से दुःख दारिद्रय दूर हो जाता है और विशेष सुख एवं लाभ की प्राप्ति होती है, मनुष्य बाधाओं से बिछुड़ जाता है, ऐसा एक मात्र राम नाम है।

जिसके कारण बुराई, विघ्न और वेदना व्याप्त नहीं होती तथा पाप क्षय होकर मन पवित्र हो जाता है। ऐसा एक मात्र हरि कीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ है।

हरि का नाम अमृत तुल्य है, जिसके स्मरण से भूत, प्रेत और डाइनी का भय नहीं रहता, बुरे दिन सामने फटकने तक नहीं, कुकर्म मिट जाते तथा मुख पर तेज छा जाता और संसार में सफलता प्राप्त होती है।

हमीर कवि अपने को सम्बोधित करके कहता है कि तू गिरिधर का गुण गान करता रह, जिस से वह तेरा साथी बन जाय और तुझे सब प्रकार की सम्पत्ति एवं सुमति प्रदान करे तथा तेरे से शत्रु रूपी कुमति दूर होजाय।

रचयिता हुकमीचन्द[1] खड़िया

—: गीत ७४ :—

करी अंग विकला हुवां करी सवला करी,
अगे अकला करी मगन अमला।
करी तन याद तन ग्राह तेहला करी,
करी गाखण गयो घरी कमला॥१॥

---

१ यह कवि सड़िया शाखा के चारणों में वि० सं० १८०० के अन्तर्गत हुआ माना जाता है। इनका स्थान डेगाणवी डेला ग्रामीण है। इनकी कविता चलती एवं ओजपूर्ण है, यह प्रसिद्ध कवि थे।

थल् सारंग निखंग कज पलंग थित,
विहँग पत न पूगो हाल वांसे।
हाल ऊवारवा निहँग छवतो हरी,
पाल अरधंग गो मतंग पासे ॥२॥
*पीत (पीत) पट खुटे हैजैत मुकुट अटपटे,
सटपटे अंग मग कटे सीधो।
अट अरी फटे लहरी कमल् ऊछटे,
रटे गज जटे कज सटे रीधो ॥३॥
हर हरी विहरी करी गत हरी हम,
रत भगत परी चीत रहतो।
करी दिव विमाण हरी आगल् करी,
करी निज पुरी गो हरी कहतो ॥४॥

अर्थः—भयंकर ग्राह द्वारा हाथी को जल में डुबा देने पर उसके अंग व्याकुल होगए, उस पवित्र भक्त(हाथी)ने ईश्वर के प्रति दुःस्वर पुकार की, उसी समय उसको सहायता करने लक्ष्मीपति लक्ष्मी को छोड़ कर दौड़ पड़े।

भोजन के लिए परोसी हुई थाली, धनुष, भाथा, शय्या और पर्यंकादि ज्यों के त्यों धरे रह गए। लक्ष्मी के रोकने पर भी न रुके और पीछे से दौड़ कर गरुड़ भी नहीं पहुँच सका। इतने शीघ्र हरि आकाश मार्ग से होते हुए गज को उबारने को जा पहुँचे।

पीत पट को भी हद न कस सके, वैजयंती माला एवं मुकुट भी अटपटे रूप में ही शरीर पर शोभित थे, आतुर हो प्रभु सीधे मार्ग पर चल पड़े, गरुड़ भी उनसे बिछुड़ गया, समुद्र की तरंगों में कमल ऊपर

नीचे हो रहे थे। ऐसी स्थिति में गज की पुकार सुन हरि द्रवित होगए।

"हे हर, हरि, विहारी"! उच्चारण करते ही हाथी चिन्ता रहित हो मोक्ष में लीन होगया। ईश्वर ने उसे अपने समक्ष ही विमानारूढ़ कर दिया, जिससे वह हाथी "हरि हरि" उच्चारण करता हुआ प्रभु के स्थान स्वर्ग को चला गया।

—: गीत ७६ :—

चंगी मांजियां पोसाक टाल जनेव चपेटा वाला,
 आयुगं भपेटा वाला हनंत उथाह।
 उवेलु सांकड़े मतां इन्द्रजीत खेटा वाला,
 वांकड़ा लपेटा वाला नमो चत्रवाह ॥१॥

कला चन्द्र झलमल कुंडला मलक्के कानां,
 हीदे रूप दहलां हलक्के हार हीर।
 धावा मार वाणां हूंता रागसां जीतणा धणा,
 बंधू रामचद्र तणा लछमणा वीर ॥२॥

मेल खंडा उलालणा टालणा विपन सतां,
 अभिमानियां चालणा कुमंडा नदां घुमंडां चहांन।
 लालधजा वाला थंडां रालणा विधूंस लंका,
 जपो लंबी भुजा वाला पालणा जहांन ॥३॥

खेध लाग वेध वाणा हीकोट गाडला खलां,
सिंधां नाडला ज्यूं जना तारणा सादेस।
करंतां पुकार सरे चाडला अनेक काजा,
अजोध्या नाथ रा भाई लाडला आदेस ॥४॥

अर्थः—सुन्दर वस्त्राभरणों से सुसज्जित, ढाल कसे हुए तथा हाथ में तलवार ग्रहण कर असुरों पर वार करते हुए अनेक असुरों का नाश करने वाले, आपत्ति आने पर बचाने तथा मेघनाद से जुटने वाले और बांकी पगड़ी बाँधने वाले हे चतुर्भुज ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

हे रामचन्द्र के वीर-भ्राता लक्ष्मण ! आपके कानों में चन्द्र किरण की तरह कुण्डल चमचमा रहे हैं। आपके सुन्दर शरीर पर हीरों का हार लटकता हुआ झूल रहा है। आप शस्त्राघात करके बहुत से राक्षसों पर विजय पाने वाले हैं।

हे प्रलम्बबाहु, लाल ध्वजा धारी, जग पोषक ! आप अपने भाले और खड्ग से आघात करते हुए संतों के विघ्न दूर कर देते हैं। टंकार करते हुए धनुष द्वारा तीर चला कर दनुज समूह को नष्ट करने वाले आपही हैं।

हे अयोध्यापति (रामचन्द्र) के भ्राता ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप पीछे पड़ विपक्षी के दृढ़ वीरों को बाण-प्रहार से बेंधने तथा अपने भक्तों के लिए भवसिंधु को छोटी तलैया का रूप देने और पुकार करते ही अनेकों काम भली प्रकार से सिद्ध करने वाले हैं।